फणीश्वरनाथ रेणु

प्रतिनिधि कहानियाँ

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में रेणु उन थोड़े-से कथाकारों में अग्रगण्य हैं जिन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन का उसके सम्पूर्ण आन्तरिक यथार्थ के साथ चित्रण किया है। स्वाधीनता के बाद भारतीय गाँव ने जिस शहरी रिश्ते को बनाया और निभाना चाहा है, रेणु की नजर उससे होनेवाले सांस्कृतिक विघटन पर भी है और इसे उन्होंने गहरी तकलीफ के साथ उकेरा है। मूल्य-स्तर पर इससे उनकी आंचलिकता अतिक्रमित हुई है और उसका एक ज़ातीय स्वरूप उभरा है। वस्तुतः ग्रामीण जन-जीवन के सन्दर्भ में रेणु की कहानियाँ अकुण्ठ मानवीयता, गहन रागात्मकता और अनोखी रसमयता से परिपूर्ण हैं। यही कारण है कि उनमें एक सहज सम्मोहन और पाठकीय संवेदना को परितृप्त करने की अपूर्व क्षमता है। मानव-जीवन की पीड़ा और अवसाद, आनन्द और उल्लास को एक कलात्मक लय-ताल सौंपना किसी रचनाकार के लिए अपने प्राणों का रस उँडेलकर ही सम्भव है और रेणु एक ऐसे ही रचनाकार हैं। इस संग्रह में उनकी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ संकलित हैं।

आवरण चित्र : अर्पिता सिंह

राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पटना

10/-

राजकमल पेपरबेक्स

फणीश्वरनाथ रेणु

प्रतिनिधि कहानियाँ

प्रतिनिधि कहानियाँ

फणीश्वरनाथ रेणु

जन्म : 4 मार्च 1921। जन्म-स्थान : औराही हिंगना नामक गाँव, जिला पूर्णिया (बिहार)।

हिन्दी कथा-साहित्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचनाकार। दमन और शोषण के विरुद्ध आजीवन संघर्षरत। राजनीति में सक्रिय हिस्सेदारी। 1942 के भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में एक प्रमुख सेनानी की भूमिका निभायी। 1950 में नेपाली जनता को राणाशाही के दमन और अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए वहाँ की सशस्त्र क्रान्ति और राजनीति में जीवन्त योगदान। 1952-53 में दीर्घकालीन रोगग्रस्तता। इसके बाद राजनीति की अपेक्षा साहित्य-सृजन की ओर अधिकाधिक झुकाव। 1954 में पहले, किन्तु बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' का प्रकाशन। कथा-साहित्य के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी लिखा। व्यक्ति और कृति-कार—दोनों ही रूपों में अप्रतिम। जीवन के सान्ध्यकाल में राजनीतिक आन्दोलन से पुनः गहरा जुड़ाव। पुलिस दमन के शिकार हुए और जेल गये। सत्ता के दमनचक्र के विरोध में पद्मश्री की उपाधि का त्याग। 11 अप्रैल, 1977 को देहावसान।

प्रकाशित प्रमुख पुस्तकें : मैला आँचल, परती-परिकथा, दीर्घतपा (उपन्यास); ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक (कहानी-संग्रह); ऋणजल-धनजल (संस्मरण) तथा नेपाली क्रान्ति-कथा (रिपोर्ताज)।

आवरणचित्र

अर्पिता सिंह (जन्म : 1937, बड़ानगर, पश्चिम बंगाल) की चित्रकृति। ललित कला महाविद्यालय, दिल्ली में अध्ययन। नियमित एकल प्रदर्शनियाँ करती रही हैं और राष्ट्रीय तथा अन्य समूह-प्रदर्शनियों में हिस्सा लेती रही हैं। 'अननोन ग्रुप' की सदस्य। राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, ललित कला अकादमी तथा अन्य संग्रहालयों में कृतियाँ संग्रहीत। बहुत सक्षम चित्रकार। कई दिशाओं और विभिन्न माध्यमों में सफलतापूर्वक काम किया। बहुत सुन्दर रेखांकनों के लिए विख्यात। ललित कला अकादमी की साधारण सभा की सदस्य रहीं। दिल्ली में रहती और काम करती हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु

प्रतिनिधि कहानियाँ

पहली बार
राजकमल पेपरबैक्स
में प्रकाशित
प्रथम संस्करण : 1984

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

मोहन गुप्त
द्वारा सम्पादित

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
8 नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

पाठ्य भाग रुचिका प्रिण्टर्स,
शाहदरा, दिल्ली, द्वारा
तथा आवरण प्रभात ऑफसेट प्रेस,
नयी दिल्ली, द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 10.00

आवरण-चित्र : अर्पिता सिंह

PRATINIDHI KAHANIYAN : Stories *by* Phanishwar Nath Renu
Edited by Mohan Gupta

समूची जिन्दगी की भरी-पूरी तस्वीर

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ हमें एक ऐसे 'हिन्दोस्तान' की अन्तर्यात्रा पर ले जाती हैं, जो अभाव, अज्ञानता, अन्धविश्वास, मजबूरी और बेबसी से घिरा है, लेकिन इस सबके बावजूद, बल्कि साथ-साथ, जिसमें जीने—भरपूर रस-रंग और फड़क के साथ जीने—की ललक है। यह ललक ही रेणु की रचना-भागीरथी का उद्गम-स्थल—गोमुख है।

रेणु के रचनाकार की मूल शक्ति उस गहरी मानवीय संवेदना में है, जो लोगों के दुख को रेणु का अपना दुख बना देती है, और इस दुख के निवारण के लिए वह खुद को जलसे-जुलूसों और आन्दोलनों में झोंक देता है और कहीं भी त्राण नहीं मिलता तो अन्त में कलम लेकर बैठ जाता है···

रेणु की अदम्य मानवीय संवेदना उसे अपने लोगों के इतने करीब, बल्कि उनके इतने भीतर ले जाती है कि द्वैत कतई नहीं रहता और तब उनकी पीड़ा, उनकी हताशा, उनकी आशा और उनके सपने रेणु की निज की मन-माटी में घुल जाते हैं और जब वह इस माटी से मूरतें गढ़ता है तो उन उदास मूरतों के धूसरित चेहरों पर असह्य पीड़ा, अपने समय की कड़ुवाहट, विषमताओं का विद्रूप और साथ ही कल की आशा की नन्हीं-सी मुस्कान भी होती है। रेणु के थके-हारे पात्र भी 'फेनुगिलासी' बोली बोलते हैं।

रेणु को अंचल का कथाकार कहा गया है। अंचल यानी सीमित परिवेश। वह रचनाकार को बाँध सकता था। लेकिन रेणु की गहन संवेदना तथा विराट दृष्टि ने उस अंचल को समूचे देश की सीमाओं तक विस्तृत कर दिया है। आज पुरनिया का वह प्रताड़ित अंचल भारतमाता का धूल-भरा आँचल बन गया है और इस आँचल में लिपटे लोगों का दुख-सुख पूरे देश का हो गया है।

रेणु के शिल्प की बहुत प्रशंसा हुई है। लेकिन लगता है कि वह कतई-कतई शिल्पकार नहीं है। तमाम विषमताओं के बावजूद जिन्दगी इतनी रस, रंग और गन्धमयी है कि कोई शिल्पकार सिर्फ उसकी नकल कर सकता है।

लेकिन रेणु ने नकल नहीं की। उसने जिन्दगी को ज्यों की त्यों उँडेल दिया है। इसी कारण एक ऐसे शिल्पहीन शिल्प की सृष्टि हुई, जो नितान्त सहज और रेणु का एकदम 'निजू' है।

रेणु की कहानियाँ प्रचलित अर्थों में कहानियाँ नहीं हैं। ये कहानी का एक नया अर्थ प्रचलित करती हैं। साहित्य की परख और मूल्यांकन के तमाम औजार इन कहानियों के सामने ओछे पड़ जाते हैं। और नये औजार सिर्फ रेणु गढ़ सकता था : "एक स्वर को लेकर, विभिन्न स्वरों से उसकी क्रमिक संगति दिखला-दिखलाकर ही किसी राग के रूप को प्रकाशित किया जाता है···ठुमरी के कथा-गायक ने ऐसी ही चेष्टा की है।"

ये कथाएँ सचमुच किसी वादक की नहीं, गायक की हैं—संगीत से सिक्त, सम्पूर्ण आरोह-अवरोह के साथ। हमें नहीं लगता ये कहानियाँ फणीश्वरनाथ रेणु की हैं—ये तो 'रिणुआ' की कहानियाँ हैं—अपने औराही-हिंगना वाले रिणुआ की !

ये कहानियाँ भिन्न परिवेश और भिन्न मुहूर्त की होते भी समूची जिन्दगी की एक भरी-पूरी तसवीर उकेरती हैं—माटी-गोबर से आँका गया एक विशाल भित्तिचित्र।

रेणु की कहानियों का चयन—सचमुच मुश्किल बात। उसकी कौन-सी कहानी प्रतिनिधि नहीं है। कोशिश सिर्फ यह की गयी है कि रेणु की कहानियों का हर रंग और हर महक पाठक तक पहुँच सके।

नयी दिल्ली
31. 1. 84

मोहन गुप्त

क्रम

धूल में पड़े कीमती पत्थर को देखकर जौहरी की आँखों में एक नयी झलक झिलमिला गयी—अपरूप-रूप !

चरवाहा मोहना छौंड़ा को देखते ही पंचकौड़ी मिरदंगिया के मुंह से निकल पड़ा—अपरूप-रूप !

···खेतों, मैदानों, बाग-बगीचों और गाय-बैलों के बीच चरवाहा मोहना की सुन्दरता !

मिरदंगिया की क्षीण-ज्योति आँखें सजल हो गयीं।

मोहना ने मुस्कराकर पूछा, "तुम्हारी उंगली तो रसपिरिया बजाते [illegible]"

"ए [illegible] [illegible]दंगिया ने चौंकते हुए कहा, "रसपिरिया ?···हाँ··· नहीं। तुमने कैसे···तुमने कहाँ सुना बे···?"

'बेटा' कहते-कहते वह रुक गया।···परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेरकर मारपीट की तैयारी की थी—'बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुड्ढे को घेरकर ! ···मृदंग फोड़ दो।'

मिरदंगिया ने हँसकर कहा था, 'अच्छा, इस बार माफ़ कर दो सरकार ! अब से आप लोगों को बाप ही कहूगा।'

बच्चे ख़ुश हो गये थे। एक दो-ढाई साल के नंगे बालक की ठुड्डी पकड़कर वह बोला था, 'क्यों, ठीक है न बापजी ?'

बच्चे ठठाकर हँस पड़े थे।

लेकिन, इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत नहीं की थी। मोहना को देखकर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है।

"रसपिरिया की बात किसने बतायी तुमसे ?···बोलो बेटा !"

दस-बारह साल का मोहना भी जानता है, पँचकौड़ी अधपगला है।··· कौन इससे पार पाये ! उसने दूर मैदान में चरते हुए अपने बैलों की ओर देखा।

मिरदंगिया कमलपुर के बाबू लोगों के यहाँ जा रहा था। कमलपुर के नन्दूबाबू के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बातें सुनने को मिल जाती हैं। एक-दो जून भोजन तो बँधा हुआ है ही; कभी-कभी रस-चरचा भी यहीं आकर सुनता है वह। दो साल के बाद वह इस इलाके में आया है। दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है।···आज सुबह शोभा मिसर के छोटे लड़के ने तो साफ़-साफ़ कह दिया—'तुम जी रहे हो या थेथरई कर रहे हो मिरदंगिया ?'

हाँ, यह जीना भी कोई जीना है ! निर्लज्जता है; और थेथरई की भी सीमा होती है।···पन्द्रह साल से वह गले में मृदंग लटकाकर गाँव-गाँव घूमता है, भीख माँगता है।···दाहिने हाथ की टेढ़ी उँगली मृदंग पर बैठती ही नहीं है, मृदंग क्या बजायेगा ! अब तो, 'धा तिंग धा तिंग' भी बड़ी मुश्किल से बजाता है।···अतिरिक्त गाँजा-भाँग सेवन से गले की आवाज़ विकृत हो गयी है। किन्तु मृदंग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की वह चेष्टा अवश्य करेगा।···फूटी भाथी से जैसी आवाज़ निकलती है, वैसी ही आवाज़—सों-य, सों-य !

पन्द्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुण्डन-छेदन आदि शुभ कार्यों में विदपतिया मण्डली की बुलाहट होती थी। पँचकौड़ी मिरदंगिया की मण्डली ने सहरसा और पूर्णिया ज़िले में काफ़ी यश कमाया है। पँचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता ! सभी जानते हैं, वह अधपगला है !···गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं—'अरे, पँचकौड़ी मिरदंगिया का भी एक ज़माना था !'

इस ज़माने में मोहना-जैसा लड़का भी है—सुन्दर, सलोना और सुरीला !···रसप्रिया गाने का आग्रह करता है, "एक रसपिरिया गाओ न मिरदंगिया !"

"रसपिरिया सुनोगे ?···अच्छा सुनाऊँगा। पहले बताओ, किसने···"

"हे-ए-ए हे-ए···मोहना, बैल भागे···!" एक चरवाहा चिल्लाया, "रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा करमू !"

"अरे बाप !" मोहना भागा।

कल ही करमू ने उसे बुरी तरह पीटा है। दोनों बैलों को हरे-हरे पाट के पौधों की महक खींच ले जाती है बार-बार।···खटमिट्ठा पाट !

पँचकौड़ी ने पुकारकर कहा, "मैं यहीं पेड़ की छाया में बैठता हूँ। तुम

बैल हाँककर लौटो। रसपिरिया नहीं सुनोगे ?"

मोहना जा रहा था। उसने उलटकर देखा भी नहीं।

रसप्रिया !

विदापत नाचवाले रसप्रिया गाते थे। सहरसा के जोगेन्दर झा ने एक बार विद्यापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपायी थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाचवालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया था रसप्रिया को।

खेत के 'आल' पर झरजामुन की छाया में पँचकौड़ी मिरदंगिया बैठा हुआ है; मोहना की राह देख रहा है।···जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं।···कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायेगी क्या ? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है ! पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था।···पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे-भरे पौधों से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी—रस की डाली। वे गाने लगते थे बिरहा, चाँचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का ख़याल करके गाये जाते हैं। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी—

'हाँ···रे, हल जोते हलवाहा भैया रे···

खुरपी रे चलावे···म-ज़-दू-र !

एहि पन्थे, धनी मोरा हे रूसलि···।'

खेतों में काम करते हलवाहों और मज़दूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में—उसकी रूठी हुई धनी को इस राह से जाते देखा है किसी ने ?···

अब तो दोपहरी नीरस कटती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है।

आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिहकारी भरी—टिं···ई···टिं-हि-क !

मिरदंगिया ने गाली दी—"शैतान !"

उसको छोड़कर मोहना दूर भाग गया है। वह आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा है। जी करता है, दौड़कर उसके पास चला जाये। दूर चरते हुए मवेशियों के झुण्डों की ओर बार-बार वह बेकार देखने की चेष्टा करता है। सब धुँधला !

उसने अपनी झोली टटोलकर देखा—आम हैं, मूढ़ी है।···उसे भूख लगी। मोहना के सूखे मुँह की याद आयी और भूख मिट गयी।

मोहना-जैसे सुन्दर, सुशील लड़कों की खोज में ही उसकी ज़िन्दगी के अधिकांश दिन बीते हैं।···विदापत नाच में नाचनेवाले 'नटुआ' का अनुसन्धान खेल नहीं।···सवर्णों के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगों के यहाँ मोहना-जैसे लड़की-मुँहा लड़के हमेशा पैदा नही होते। ये अवतार लेते हैं समय-समय पर जदा जदा हि···

मैथिल ब्राह्मणों, कायस्थों और राजपूतों के यहाँ विदापतवालों की बड़ी इज्ज़त होती थी।···अपनी बोली—मिथिलाम— में नटुआ के मुँह से 'जनम अवधि हम रूप निहारल' सुनकर वे निहाल हो जाते थे। इसलिए हर मण्डली का 'मूलगैन' नटुआ की खोज में गाँव-गाँव भटकता फिरता था—ऐसा लड़का, जिसे सजा-धजाकर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाये।

"ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है। है न?"

"मधुकान्त ठाकुर की बेटी की तरह···।"

"न:! छोटी चम्पा-जैसी सूरत है!"

पँचकौड़ी गुनी आदमी है। दूसरी-दूसरी मण्डली में मूलगैन और मिरदंगिया की अपनी-अपनी जगह होती। पँचकौड़ी मूलगैन भी था और मिरदंगिया भी। गले में मृदंग लटकाकर बजाते हुए वह गाता था, नाचता था। एक सप्ताह में ही नया लड़का भाँवरी देकर परवेश में उतरने योग्य नाच सीख लेता था।

नाच और गाना सिखाने में कभी उसे कठिनाई नहीं हुई; मृदंग के स्पष्ट 'बोल' पर लड़कों के पाँव स्वयं ही थिरकने लगते थे। लड़कों के ज़िद्दी माँ-बाप से निबटना मुश्किल व्यापार होता था। विशुद्ध मैथिली में और भी शहद लपेटकर वह फुसलाता···

"किसन कन्हैया भी नाचते थे। नाच तो एक गुण है।···अरे, जाचक कहो या दसदुआरी। चोरी, डकैती और आवारागर्दी से अच्छा है। अपना-अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना।"

एक बार उसे लड़के की चोरी भी करनी पड़ी थी।···बहुत पुरानी बात है। इतनी मार लगी थी कि···बहुत पुरानी बात है।

पुरानी ही सही, बात तो ठीक है।

"रसपिरिया बजाते समय तुम्हारी उँगली टेढ़ी हुई थी। ठीक है न?"

मोहना न जाने कब लौट आया।

मिरदंगिया के चेहरे पर चमक लौट आयी। वह मोहना की ओर एक टकटकी लगाकर देखने लगा···यह गुणवान मर रहा है। धीरे-धीरे, तिल-तिल कर वह खो रहा है। लाल-लाल होंठों पर बीड़ी की कालिख लग गयी

है। पेट में तिल्ली है ज़रूर!···

मिरदंगिया वैद्य भी है। एक झुण्ड बच्चों का बाप धीरे-धीरे एक पारिवारिक डाक्टर की योग्यता हासिल कर लेता है।···उत्सवों के बासी-टटका भोज्यान्नों की प्रतिक्रिया कभी-कभी बहुत बुरी होती। मिरदंगिया अपने साथ नमक-सुलेमानी, चानमार-पाचन और कुनैन की गोली हमेशा रखता था।···लड़कों को सदा गरम पानी के साथ हल्दी की बुकनी खिलाता। पीपल, काली मिर्च, अदरक वगैरह को घी में भूनकर शहद के साथ सुबह-शाम चटाता।···गरम पानी!

पोटली से मूढ़ी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला, "हाँ, गरम पानी! तेरी तिल्ली बढ़ गयी है, गरम पानी पियो!"

"यह तुमने कैसे जान लिया? फारबिसगंज के डागडरबाबू भी कह रहे थे, तिल्ली बढ़ गयी है। दवा···।"

आगे कहने की जरूरत नहीं। मिरदंगिया जानता है, मोहना-जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है! क्या होगा पूछकर, कि दवा क्यों नहीं करवाते!

"माँ भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज़ गरम पानी। तिल्ली गल जायेगी।"

मिरदंगिया ने मुस्कराकर कहा, "बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ!"

केले के सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसने बड़े प्यार से कहा, "आओ, एक मुट्ठी खा लो।"

"नहीं, मुझे भूख नहीं।"

किन्तु मोहना की आँखों से रह-रहकर कोई झाँकता था, मूढ़ी और आम को एकसाथ निगल जाना चाहता था।···भूखा, बीमार, भगवान!

"आओ, खा लो बेटा!···रसपिरिया नहीं सुनोगे?"

माँ के सिवा, आज तक किसी अन्य व्यक्ति ने मोहना को इस तरह प्यार से कभी परोसे भोजन पर नहीं बुलाया।···लेकिन, दूसरे चरवाहे देख लें तो माँ से कह देंगे।···भीख का अन्न!

"नहीं, मुझे भूख नहीं।"

मिरदंगिया अप्रतिभ हो जाता है। उसकी आँखें फिर सजल हो जाती हैं। मिरदंगिया ने मोहना-जैसे दर्जनों सुकुमार बालकों की सेवा की है। अपने बच्चों को भी शायद वह इतना प्यार नहीं दे सकता।···और अपना बच्चा! हुँ!···अपना-पराया? अब तो सब अपने, सब पराये।···

"मोहना!"

"कोई देख लेगा तो?"

"तो क्या होगा ?"

"माँ से कह देगा। तुम भीख माँगते हो न ?"

"कौन भीख माँगता है ?" मिरदंगिया के आत्म-सम्मान को इस भोले लड़के ने बेवजह ठेस लगा दी। उसके मन की झाँपी में कुण्डलीकार सोया हुआ साँप फन फैलाकर फुफकार उठा, "ए-स्साला ! मारेंगे वह तमाचा कि···"

"ऐ ! गाली क्यों देते हो !" मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया।

वह उठ खड़ा हुआ, पागलों का क्या विश्वास !

आसमान में उड़ती हुई चील ने फिर टिंहकारी भरी···टिं हीं···ई··· टिं-टिं-ग !

"मोहना !" मिरदंगिया की आवाज गम्भीर हो गयी।

मोहना ज़रा दूर जाकर खड़ा हो गया।

"किसने कहा तुमसे कि मैं भीख माँगता हूँ ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूँ।···तुम ठीक कहते हो, भीख का ही अन्न है यह। भीख का ही फल है यह।··· मैं नहीं दूँगा।···तुम बैठो, मैं रसपिरिया सुना दूँ।"

मिरदंगिया का चेहरा धीरे-धीरे विकृत हो रहा है।···आसमान में उड़नेवाली चील अब पेड़ की डाली पर आ बैठी है।···टिं-टिं-हिं टिंटिक !

मोहना डर गया। एक डग, दो डग···दे दौड़। वह भागा।

एक बीघा दूर जाकर उसने चिल्लाकर कहा, "डायन ने बान मारकर तुम्हारी उँगली टेढ़ी कर दी है। झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाते समय···"

"ऐं ! कौन है यह लड़का ? कौन है यह मोहना ?···रमपतिया भी कहती थी, डायन ने बान मार दिया है।"

"मोहना !"

मोहना ने जाते-जाते चिल्लाकर कहा, "करैला !" अच्छा, तो मोहना यह भी जानता है कि मिरदंगिया 'करैला' कहने से चिढ़ता है !···कौन है यह मोहना ?

मिरदंगिया आतंकित हो गया। उसके मन में एक अज्ञात भय समा गया। वह थर-थर काँपने लगा। उसमें कमलपुर के बाबुओं के यहाँ जाने का उत्साह भी नहीं रहा।···सुबह शोभा मिसर के लड़के ने ठीक ही कहा था।

उसकी आँखों में आँसू झरने लगे।

जाते-जाते मोहना डंक मार गया। उसके अधिकांश शिष्यों ने ऐसा ही व्यवहार किया है उसके साथ। नाच सीखकर फुर्र से उड़ जाने का बहाना खोजनेवाले एक-एक लड़के की बातें उसे याद हैं।

सोनमा ने तो गाली ही दी थी—'गुरुगिरी करता है, चोट्टा !'

रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी—'हे दिनकर ! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्बनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरुज भगवान ! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग-अंग फूटकर···।'

मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी उँगली को हिलाते हुए एक लम्बी साँस ली।···रमपतिया ? जोधन गुरुजी की बेटी रमपतिया ! जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मण्डली में शामिल हुआ था—रमपतिया बारहवें में पाँव रख रही थी।···बाल-विधवा रमपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी। काम करते-करते वह गुनगुनाती—'नव अनुरागिनी राधा, किछु नँहि मानय बाधा।'···मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था···आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजात पँचकौड़ी से रमपतिया के चुमौना की बात चलायी तो मिरदंगिया सभी ताल-मात्रा भूल गया। जोधन गुरुजी से उसने अपनी जात छिपा रखी थी। रमपतिया से उसने झूठा परेम किया था। गुरुजी की मण्डली छोड़कर वह रातों-रात भाग गया। उसने गाँव आकर अपनी मण्डली बनायी, लड़कों को सिखाया-पढ़ाया और कमाने-खाने लगा।···लेकिन, वह मूलगैन नहीं हो सका कभी। मिरदंगिया ही रहा सब दिन।···जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद, एक बार गुलाब-बाग मेले में रमपतिया से उसकी भेंट हुई थी। रमपतिया उसी से मिलने आयी थी। पँचकौड़ी ने साफ़ जवाब दे दिया था—'क्या झूठ-फरेब जोड़ने आयी है ? कमलपुर के नन्दूबाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आयी है। नन्दूबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को···।' चीख उठी थी रमपतिया—'पाँचू !···चुप रहो !'

उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी थी। मृदंग पर जमनिका देकर वह परबेस का ताल बजाने लगा। नटुआ ने डेढ़ मात्रा बेताल होकर प्रवेश किया तो उसका माथा ठनका। परबेस के बाद उसने नटुआ को झिड़की दी—'एस्साला ! थप्पड़ों से गाल लाल कर दूँगा।' ···और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गयी। मिरदंगिया ने ताल को सम्हालने की बहुत चेष्टा की। मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावा-फरही फूटने लगे और ताल कटते-कटते उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी। झूठी टेढ़ी उँगली !···हमेशा के लिए पँचकौड़ी की मण्डली टूट गयी। धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति-नाच ही उठ गया। अब तो कोई विद्यापति की

चर्चा भी नहीं करते हैं।···धूप-पानी से परे, पँचकौड़ी का शरीर ठण्डी महफ़िली में ही पनपा था···बेकार ज़िन्दगी में मृदंग ने बड़ा काम दिया। बेकारी का एकमात्र सहारा—मृदंग !

एक युग से वह गले में मृदंग लटकाकर भीख माँग रहा है—धा-तिग, धा-तिग !

वह एक आम उठाकर चूसने लगा—लेकिन, लेकिन,···लेकिन···मोहना को डायन की बात कैसे मालूम हुई ?

उँगली टेढ़ी होने की खबर सुनकर रमपतिया दौड़ी आयी थी, घण्टों उँगली को पकड़कर रोती रही थी—'हे दिनकर, किसने इतनी बड़ी दुश्मनी की ? उसका बुरा हो।···मेरी बात लौटा दो भगवान ! गुस्से में कही हुई बातें। नहीं, नहीं। पाँचू, मैंने कुछ भी नहीं किया है। ज़रूर किसी डायन ने बान मार दिया है।'

मिरदंगिया ने आँखें पोंछते हुए ढलते हुए सूरज की ओर देखा। ··इस मृदंग को कलेजे से सटाकर रमपतिया ने कितनी रातें काटी हैं ! ···मिरदंग को उसने अपनी छाती से लगा लिया।

पेड़ की डाली पर बैठी हुई चील ने उड़ते हुए जोड़े से कुछ कहा—टिं-टिं-हिक् !

"एस्साला !" उसने चील को गाली दी। तम्बाकू चुनियाकर मुँह में डाल ली और मृदंग के पूरे पर उँगलियाँ नचाने लगा—धिरिनागि, धिरिनागि, धिरिनागि-धिनता !

पूरी जमनिका वह नहीं बजा सका। बीच में ही ताल टूट गया।

—अ्-कि-हे-ए-ए-हा-आआ-ह-हा !

सामने झरबेरी के जंगल के उस पार किसी ने सुरीली आवाज मे, बड़े समारोह के साथ रसप्रिया की पदावली उठायी—

"न-व-वृन्दा-वन, न-व-न-व-तरु-ग-न, न-व-नव विकसित फूल···"

मिरदंगिया के सारे शरीर में एक लहर दौड़ गयी। उसकी उंगलियाँ स्वयं ही मृदंग के पूरे पर थिरकने लगीं। गाय-बैलों के झुण्ड दोपहर की उतरती छाया में आकर जमा होने लगे।

खेतों में काम करनेवालों ने कहा, "पागल है। जहाँ जी चाहा, बैठकर बजाने लगता है।"

"बहुत दिन के बाद लौटा है।"

"हम तो समझते थे कि कहीं मर-खप गया।"

रसप्रिया की सुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गयी। मिरदंगिया का पागलपन अचानक बढ़ गया। वह उठकर दौड़ा। झरबेरी की झाड़ी के

उस पार कौन है ? कौन है यह शुद्ध रसप्रिया गानेवाला ? ···इस जमाने में रसप्रिया का रसिक···? झाड़ी में छिपकर मिरदंगिया ने देखा, मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है। गुनगुनाहट बन्द करके उसने गले को साफ़ किया। मोहना के गले में राधा आकर बैठ गयी है ! ···क्या बन्दिश है !

"न-दी-बह नयनक नी···र !

आहो···पललि बहए ताहि ती···र !"

मोहना बेसुध होकर गा रहा था। मृदंग के बोल पर वह झूम-झूमकर गा रहा था। मिरदंगिया की आँखें उसे एकटक निहार रही थीं और उसकी उँगलियाँ फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं।···चालीस वर्ष का अधपागल युगों के बाद भावावेश में नाचने लगा।···रह-रहकर वह अपनी विकृत आवाज़ में पदों की कड़ी धरता—फोंय-फोंय, सोंय-सोंय !

धिरिनागि-धिनता !

"दुहु रस···म···य तनु-गुने नहीं ओर।

लागल दुहुक न भाँगय जो-र।"

मोहना के आधे काले और आधे लाल होंठों पर नयी मुस्कराहट दौड़ गयी। पद समाप्त करते हुए वह बोला, "इस्स ! टेढ़ी उँगली पर भी इतनी तेज़ी ?"

मोहना हाँफने लगा। उसकी छाती की हड्डियाँ !

···उफ़ ! मिरदंगिया धम्म से ज़मीन पर बैठ गया—"कमाल ! कमाल ! ···किससे सीखे ? कहाँ सीखी तुमने पदावली ? कौन है तुम्हारा गुरु ?"

मोहना ने हँसकर जवाब दिया, "सीखूँगा कहाँ ? माँ तो रोज़ गाती है।···प्रातकी मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।"

"हाँ बेटा ! बेताले के साथ कभी मत गाना-बजाना। जो कुछ भी है, सब चला जायेगा।···समय-कुसमय का भी खयाल रखना। लो, अब आम खा लो।"

मोहना बेझिझक आम लेकर चूसने लगा।

"एक और लो।"

मोहना ने तीन आम खाये और मिरदंगिया के विशेष आग्रह पर दो मुट्ठी मूढ़ी भी फाँक गया।

"अच्छा, अब एक बात बताओगे मोहना ! तुम्हारे माँ-बाप क्या करते हैं ?"

"बाप नहीं है, अकेली माँ है। बाबू-लोगों के घर कुटाई-पिसाई करती है।"

"और तुम नौकरी करते हो! किसके यहाँ?"

"कमलपुर के नन्दूबाबू के यहाँ।"

"नन्दूबाबू के यहाँ?"

मोहना ने बताया, उसका घर सहरसा में है। तीसरे साल सारा गाँव कोसी मैया के पेट में चला गया। उसकी माँ उसे लेकर अपने ममहर आयी है···कमलपुर।

"कमलपुर में तुम्हारी माँ के मामू रहते हैं?"

मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहा।··· नन्दूबाबू—मोहना—मोहना की माँ!

"डायनवाली बात तुम्हारी माँ कह रही थी?"

"हाँ।"

"और एक बार सामदेव झा के यहाँ जनेऊ में तुमने गिरधर-पट्टी मण्डलीवालों का मिरदंग छीन लिया था।···बेताला बजा रहा था। ठीक है न?"

मिरदंगिया की खिचड़ी दाढ़ी मानो अचानक सफ़ेद हो गयी। उसने अपने को सम्हालकर पूछा, "तुम्हारे बाप का क्या नाम है?"

"अजोधादास!"

"अजोधादास?"

बूढ़ा अजोधादास, जिसके मुँह में न बोल, न आँख में लोर।···मण्डली में गठरी ढोता था। बिना पैसे का नौकर बेचारा अजोधादास!

"बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ।" एक लम्बी साँस लेकर मिरदंगिया ने अपनी झोली से एक छोटा बटुआ निकाला। लाल-पीले कपड़ों के टुकड़ों को खोलकर कागज़ की एक पुड़िया निकाली उसने।

मोहना ने पहचान लिया—"लोट? क्या है, लोट?"

"हाँ, नोट है।"

"कितने रुपयेवाला है? पँचटकिया। ऐं···दसटकिया? ज़रा छूने दोगे? कहाँ से लाये?" मोहना एक ही साँस में सब कुछ पूछ गया, "सब दसटकिया हैं?"

"हाँ, सब मिलाकर चालीस रुपये हैं।" मिरदंगिया ने एक बार इधर-उधर निगाहें दौड़ायीं; फिर फुसफुसाकर बोला, "मोहना बेटा! फारबिस-गंज के डागडरबाबू को देकर बढ़िया दवा लिखा लेना।···खट्टा-मिट्ठा परहेज करना।···गरम पानी ज़रूर पीना।"

"रुपये मुझे क्यों देते हो?"

"जल्दी रख ले, कोई देख लेगा।"

मोहना ने भी एक बार चारों ओर नजर दौड़ायी। उसके होंठों की कालिख और गहरी हो गयी।

मिरदंगिया बोला, "बीड़ी-तम्बाकू भी पीते हो? ख़बरदार!"

वह उठ खड़ा हुआ।

मोहना ने रुपये ले लिये।

"अच्छी तरह गाँठ बाँध ले। माँ से कुछ मत कहना।"

"और हाँ, यह भीख का पैसा नहीं। बेटा, यह मेरी कमाई के पैसे हैं। अपनी कमाई के···।"

मिरदंगिया ने जाने के लिए पाँव बढ़ाया।

"मेरी माँ खेत में घास काट रही है। चलो न!" मोहना ने आग्रह किया।

मिरदंगिया रुक गया। कुछ सोचकर बोला, "नहीं मोहना! तुम्हारे-जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ 'महारानी' हैं, मैं महाभिखारी दस-दुआरी हूँ। जाचक, फकीर···! दवा से जो पैसे बचें, उसका दूध पीना।"

मोहना की बड़ी-बड़ी आँखें कमलपुर के नन्दूबाबू की आँखों-जैसी हैं···।

"रे मो-ह-ना-रे-हे! बैल कहाँ हैं रे?"

"तुम्हारी माँ पुकार रही है शायद।"

"हाँ। तुमने कैसे जान लिया?"

"रे-मोहना-रे-हे!"

एक गाय ने सुर-में-सुर मिलाकर अपने बछड़े को बुलाया।

गाय-बैलों के घर लौटने का समय हो गया। मोहना जानता है, माँ बैल हाँककर ला रही होगी। झूठ-मूठ उसे बुला रही है। वह चुप रहा।

"जाओ।" मिरदंगिया ने कहा, "माँ बुला रही है। जाओ।···अब से मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊँगा। देखो, मेरी उँगली शायद सीधी हो रही है। शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल?···

"अरे, चलू मन, चलू मन— ससुरार जइवे हो रामा,

कि आहो रामा,

नैहिरा में अगिया लगायब रे-की···।"

खेतों की पगडण्डी, झरबेरी के जंगल के बीच होकर जाती है। निरगुन गाता हुआ मिरदंगिया झरबेरी की झाड़ियों में छिप गया।

"ले। यहाँ अकेला खड़ा होकर क्या करता है? कौन बजा रहा था मृदंग रे?" घास का बोझा सिर पर लेकर मोहना की माँ खड़ी है।

"पँचकौड़ी मिरदंगिया।"

"ऐं, वह आया है? आया है वह?" उसकी माँ ने बोझ जमीन पर

पटकते हुए पूछा।

"मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गाया है। कहता था, इतना शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल !···उसकी उँगली अब ठीक हो जायेगी।"

माँ ने बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लिया।

"लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी—बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है !"

"है तो ! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। ख़बरदार, जो उसके साथ फिर कभी गया ! दसदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है।···चल, उठा बोझ !"

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा, 'जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसपिरिया···।"

"चोप ! रसपिरिया का नाम मत ले।"

अजीब है माँ ! जब गुस्सायेगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुँकारती आयेगी और छाती से लगा लेगी। तुरत खुश, तुरत नाराज़।···

दूर से मृदंग की आवाज़ आयी—धा-तिंग, धा-तिंग !

मोहना की माँ खेत की ऊबड़-खाबड़ मेड़ पर चल रही थी। ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया। मोहना पीछे-पीछे मुँह लटकाकर जा रहा था। बोला, "क्या हुआ, माँ ?"

"कुछ नहीं।"

—धा-तिंग, धा-तिंग !

मोहना की माँ खेत की मेड़ पर बैठ गयी। जेठ की शाम से पहले जो पुरवैया चलती है, धीरे-धीरे तेज़ हो गयी।···मिट्टी की सोंधी सुगन्ध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।

—धा-तिंग, धा-तिंग !

"मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?" मोहना की माँ आगे कुछ न बोल सकी।

"कहता था, तुम्हारे-जैसा गुणवान बेटा···"

"झूठा, बेईमान !" मोहना की माँ आँसू पोंछकर बोली, "ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना।"

मोहना चुपचाप खड़ा रहा।

विघटन के क्षण

रानीडिह की ऊँची ज़मीन पर—लाल माटी वाले खेत में—अक्षत-सिन्दूर बिखरे हुए हैं—हज़ारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में 'कचर-पचर' कर रही हैं। बीती हुई रात के तीसरे पहर तक, जहाँ सारे रानीडिह गाँव की कुमारी-कन्याएँ कचर-पचर नृत्य-गीत-अभिनय कर चुकी हैं।

रात में शामा-चकेवा 'भँसाया' गया है···प्रतिमा-विसर्जन !

श्यामा, चकवा, खंजन, बटेर, चाहा, पनकौआ, हांस, बनहांस, अधँगा, लालसर, पनकौड़ी, जलपरेवा से लेकर कीट-पतंगों में भुनगा, भेम्हा, अँख-फोड़वा, गन्धी, गोबरैला तक की मिट्टी की छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही मूर्तियाँ गढ़ी गयी थीं, रँगी गयी थीं। दो रात तक उन्हें ढेलेवाले खेतों में चराया गया अर्थात उनकी पूजा की गयी। रात को विसर्जन !

बिरनावन (बृन्दावन) जले हैं—सैकड़ों। हज़ारों चुगलों के पुतले ! पुतलों की शिखाएँ जली हैं—घर-घर में तू झगड़ा लगावे, बाप-बेटा से रगड़ा करावे; सब दिन पानी में आगि लगावे, बिनु कारन सब दिन छुछुवावे—तोर 'टिकी' में आगि लगायब रे चुगला···छुछुन्दरमुँहे···मुँह-झौंसे···चुगले···हाहाहाहा !

सैकड़ों लड़कियों की खिलखिलाहट ! तालियाँ !

तारे झरे, पायल झनके। हुस्नहिना के गुच्छों ने लम्बी साँस ली। रात भीग गयी···।

धरती पर बिखरे अक्षत-सिन्दूर। दूबों पर बिखरे मोती के दाने।···छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों के टुकड़े !

···अचानक, एक चील ने डैना फड़फड़ाया। सभी चिरैयाँ एकसाथ भड़ककर उड़ीं। गौरैयों की विशाल टोली सरसों के खेत में जा बैठी।

बहुत दिनों के बाद—कोई पाँच बरस के बाद—धूमधाम से 'शामा-चकेवा' पर्व मनाया है रानीडिह की कुमारियों ने।

एक चदरी-भर सरदी पड़ गयी। अगहनी धान के खेतों में अब हलकी लाली दौड़ गयी है अर्थात अब दानों में दूध सूख रहा है। आलू के पौधों में पत्तियाँ लग गयी हैं। सुबह-सुबह गोभी की सिंचाई कर रहे हैं, सभी।

"बिजैया'दी ! तू इतना सबेरे 'कोबी' जो पटाती हो, सो बकार ही ना ? तू तो अब पटना में रहेगी···।"

"चुप हरजाई !" गंगापुरवाली दादी ने चिढ़कर चुरमुनियाँ को झिड़की दी, "दिन-भर बेबात की बात बकबक करती रहती है यह रत्ती-भर की छौंड़ी।"

चुरमुनियाँ, रत्ती-भर की छोकरी चुप नहीं रही। आँखें नचाकर, ओठों को बिदकाकर बोली, "हुँह ! तोरे तो मजा है। कोबी रोपकर पटा रही है बिजैया'दी और टोकरी भर-भरके फूल बेचेगी तू। और जब हिसाब पूछेगी पटना से आकर मलकिन-काकी तो···तो···ई ऊँगली तोड़ना, ऊ ऊँगली मोड़ना मगर भूलल हिसाब कभी न जोड़ना···हिहिहिहि···!"

दादी ने इस बार एक गन्दी गाली दी। गाली सुनकर चुरमुनियाँ ने विजया की ओर देखा। विजया शुरू से ही मुसकरा रही थी। इस काली-कलूटी लड़की की मीठी शैतानी को वह खूब समझती है। ज़हर है यह छोकरी ! लछमन की पोती !

गंगापुरवाली दादी को चुरमुनियाँ की बात लगी नहीं, किन्तु वह नकियाकर कुछ बोली। चुरमुनियाँ ने समझ लिया। बोली, "क्यों दादी, मैं झूठ कहती हूँ ? बेचारी गंगापुरवाली दादी, जो गण्डा से आगे गिनती न जाने, उससे मलकिन-काकी पूछेगी, 'पाँच टके सैंकड़ा के दर से डेढ़ सौ बीजू आम का दाम ?' हे-हे-ए—हा-हा-हा बस; दादी को तो 'आकाशी' लग गयी—ही-ही-ही-ही !"

विजया बोली, "जल्दी-जल्दी हौज भर दे।"

आठ-नौ साल की इस लड़की से पार पाना खेल नहीं। विजया को छोड़कर उससे और कोई काम नहीं ले सकता, उसकी माँ भी नहीं। बाप को तो वह बोलने ही नहीं देती कुछ।

जब से विजया रानीडिह आयी है, चुरमुनियाँ दिन-रात 'बड़घरिया' हवेली में ही रहती है।

कल चुरमुनियाँ कह रही थी, "बिजैया'दी, तू आयी है तो लगता है रानीडिह गाँव में कोई 'परब-त्योहार'···माने···ठीक देवी-दुर्गा के मेला के समय जैसा लगता है वैसा ही लगता है। अब तो तुम भी ठीक 'खरगेंट' (खंजन) चिरैंया की तरह साल में एक बार आओगी, जैसे मलकिन-काकी आती है।···अब तुम भी शहर में जाकर 'चोंचवाली अँगिया' पहनोगी।"

"लात खायेगी अब तू।" दादी ने साग खोंटते चेतावनी दी, "है तनिक भी बड़े-छोटे का लिहाज इस छिनाल को ?"

दादी बीच-बीच में बाल पकड़कर घसीटती-पीटती भी है, और उस दिन सारे गाँव में कुहराम मच जाता है; चुरमुनियाँ किसी राख के घूरे में लोट-लोटकर एकदम 'भूतनी' हो जाती है और उसके मुँह से छन्दबद्ध

पंक्तियाँ—'रुदनगीत' की—अनायास ही निकलती रहती हैं—"री-ई-ई बुढ़िया गंगपरनी, बड़घरिया की घरनी, हमरो सौतिनी-ई-ई बिना रे कर-नवा हमरा मारलि गे-ए-बुढ़िया गंगपरनी-ई-ई···।" लड़की तो नहीं, एक 'अवतार' है, समझो।

गंगापुरवाली दादी की मुसकराहट पोपले मुँह पर देखने योग्य होती है। हँसती हुई कहती है, "जानती है बिजै, भागलपुरवाली को इस निगोड़ी ने कैसा 'बेपानी' किया था ?"

गंगापुरवाली दादी ने मद्धिम आवाज़ में कहा, "भागलपुरवाली उस बार आयी भादों में। एक दिन 'बक्कस' से कपड़ा निकालकर धूप में सुखाने को दिया। कपड़ों को पसारते समय यह 'लौंगी-मिर्च-छौंड़ी' अचानक चिल्लाने लगी—ले ले लाला···जर्मनवाला···रबड़वाला···गेंदवाला···चोंचवाला···। मैंने झाँककर देखा, बाँस की एक कमानी में भागलपुरवाली की 'अँगिया' लटकाये चुरमुनियाँ नचा-नचाकर चिल्ला रही है। उधर, दरवाज़े पर, दरवाज़ा-भर पंचायत के लोग।···भागलपुरवाली जलती 'उकाठी' लेकर दौड़ी थी।"

गंगापुरवाली दादी के साथ विजया भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

चुरमुनियाँ खोजकर बड़ी बाल्टी ले आयी।

आठ बजे वाली गाड़ी आने से पहले ही गोभी की सिंचाई हो गयी। बाल्टी-लोटा-डोरी लेकर चुरमुनियाँ के साथ विजया भाजी की बगिया से बाहर आयी। इस बार चुरमुनियाँ अपने झबरे बालों में उँगली चलाते हुए बोली, "बिजैया'दी, सचमुच कल ही चली जाओगी ? धेत्त···मत जाओ बिजैया'दी !"

इस बार विजया ने एक लम्बी साँस ली।

बड़घरिया हवेली। पहले यही अकेली हवेली थी।

पहले सिर्फ़ 'बड़घरिया' कहने से ही लोग समझ लेते थे—रानीडिह का चौधरी-परिवार। अब 'हवेली' जोड़ना पड़ता है, क्योंकि रानीडिह में अब एक नहीं, कई 'बड़घरिया' हैं।

बड़घरिया हवेली के एकमात्र वंशधर श्री रामेश्वर चौधरी एम.एल.ए. पिछले कई वर्ष से पटना में ही रहते हैं, सपरिवार। दूर-रिश्ते की एक मौसी यानी गंगापुरवाली दादी बड़घरिया हवेली का पहरा करती है। हलवाहा सीप्रसाद खेती-बारी देखता है। लोग उसे 'मनीजर' कहते हैं। मखौल में रखा हुआ नाम ही अब 'चालू' हो गया है सीप्रसाद का—'मनीजर'।

'छिटपुट ज़मीन' यानी आधीदारी पर लगी हुई जमीनों की हर साल

बिक्री करके रामेश्वर बाबू अब 'निझंझट' हो गये हैं; खुदकाश्त में थोड़ी-'सी ज़मीन है, पोखर और बाग-बगीचे हैं। जिस दिन कोई बडा गाहक लग जाये, बेचकर छुट्टी! छुट्टी माने, इस रानीडिह गाँव से, अपनी 'जन्मभूमि' से कोई लगाव—किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते रामेश्वर बाबू। ···मजबूरी है!

पिछले पन्द्रह साल से रामेश्वर बाबू पटना में रहते हैं—पटना के एम. एल. ए. क्वार्टर में। अब राजेन्द्रनगर में घर बनवा रहे हैं। इस बार सम्भव है, 'पार्टी-टिकट' नहीं मिले। किन्तु, अब गाँव रानीडिह लौटकर नहीं आ सकते। किसी गाँव में अब नहीं रह सकते···!

स्वर्गीय बड़े भाई सिद्धेश्वर चौधरी की विधवा की हाल ही में मृत्यु हो गयी। बड़े भाई की एकमात्र सन्तान विजया, जो अपनी माँ के साथ पिछले सात-आठ साल से मामा के घर थी, सोलहवाँ साल पार कर रही है। विजया के बड़े मामा ने कड़ी चिट्ठी लिखी विजया के काका को इस बार —'जिनके त्याग और बलिदान का मीठा फल आप खा रहे हैं उनकी स्त्री को तो झाड़ू मारकर ऐसा निकाला कि···। खैर, वह मरी और दुख से उबरी। लेकिन, आपका 'सिरदर्द' दूर नहीं हुआ है। अभी आपको थोड़ा और कष्ट भोगना बाक़ी है। विजया अब ब्याहने के योग्य हो गयी।···यदि आप मेरे इस पत्र पर ध्यान नहीं देंगे तो मुझे मजबूर होकर आपकी पार्टी के प्रधान को लिखना पड़ेगा!'

इस बार दुर्गापूजा की छुट्टी में रामेश्वर बाबू अपनी स्त्री (भागलपुर-वाली) के साथ रानीडिह आये। नारायणगंज आदमी भेजकर विजया को बुलवा लिया। काली-पूजा के बाद जब पटना वापस आने लगे तो गंगापुर-वाली ने कहा, "बिजैया यहाँ दस दिन और रहकर 'साग-भाजी' लगा जाती। फिर भागलपुरवाली बहू तो धान काटने के लिए एक महीना के बाद आवेगी ही। उसी के साथ चली जावेगी!"

रामेश्वर बाबू को बात पसन्द आयी। कहा, "ठीक है। 'नवान्न' के बाद ही विजया जायगी, पटना।"

लेकिन परसों चिट्ठी आयी है—बहू धान कटाने के लिए इस बार नहीं आ सकती। मकान बन रहा है। दिन-रात मज़दूरों के सिर पर सवार रहना पड़ता है। अगले सप्ताह 'ढलैया' शुरू होगी। इसलिए 'शामा-चकेवा' के बाद विजया अपने छोटे मामा के साथ चली आवे पटना···ज़रूर-से-ज़रूर···।

आज शाम तक विजया के छोटे मामा नारायणगंज से आ जायेंगे। कल गाड़ी से विजया पटना चली जायेगी।

चुरमुनियाँ अपने घर का बस एक काम करती है। साँझ को पूरब-टोले के साहू की दूकान से सौदा ला देती है—मकई, चना, नून, तेल, बीड़ी। हिसाब जोड़ने में कभी एक पाई भी ग़लती नहीं करती। अपने दादा-दादी से ज्यादा हिसाब जानती है वह। साहू की दूकान पर होनेवाली 'गप' में चुरमुनियाँ 'रस' डाल देती है—"अब बिजैया'दी भी चली जायगी। कल ही जायगी।"

"और गंगापुरवाली?"

"ऊ चली जायगी तो यहाँ कलमी आम का 'बगान' कौन 'जोगेगी' रात-भर जगकर?"

चुरमुनियाँ की बात सुनकर सभी हँसे। रामफल की घरवाली ने पूछा, "और तुझे नहीं ले जा रही बिजैया?"

"धेत्त! मैं क्यों जाऊँ?"

सच्चिदा पाँच पैसे का कपूर लेने आया था। विजया के कल ही जाने की ख़बर सुनकर स्तब्ध रह गया।

उजड़े हुए हिंगना-मठ पर खंजड़ी बजाकर सतगुरु का नाम लेनेवाला एकमात्र बाबाजी सूरतदास बैरागी कहता है, "सभी जायेंगे। एक-एक कर सभी जायेंगे···।"

गाँव की मशहूर झगड़ालू औरत बण्ठा की माँ बोली, "ई बाबाजी के मुँह में 'कुलच्छन' छोड़कर और कोई बानी नहीं। जब सुनो तब—सभी जायेंगे! जब से यह बानी बोलने लगा है बूढ़ा बाबाजी, गाँव के 'जवान-जहान' लड़के गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। पता नहीं, शहर के पानी में क्या है कि जो एक बार एक घूँट भी पी लेता है, फिर गाँव का पानी हजम नहीं होता। गोबिन गया, अपने साथ पँचकौड़िया और सुगवा को लेकर। उसके बाद, बाभन-टोले के दो बूढ़े अरजुन मिसर और गेंदा झा···।"

रामफल की बीवी ने बीच में ही बण्ठा की माँ को काट दिया, "अरजुन मिसर और गेंदा झा की बात कहती हो, मौसी? तो पूछती हूँ कि गाँव में वे दोनों करते ही क्या थे? 'बिलल्ला' होकर इसके दरवाजे से उसके दरवाजे पर खैनी 'चुनियाते' और दाँत निपोड़कर भीख माँगते दिन काटते थे। अब शहर में जाकर 'होटिल' में भात राँधते हैं दोनों। पिछले महीने अरजुन मिसर आया था। अब बटुआ में पनडब्बा और सुर्त्ती रखता है। तोंद निकल गया है।"

"तो तू भी रामफल को क्यों नहीं भेज देती? तोंद निकल जायगा।"

किसी ने कहा, "एह! सभी जाकर शहर में 'रिक्शागाड़ी' खींचते हैं। हे भगवान! अन्धेर है।"

जवाब मिला, "क्यों ? रिक्शा खींचना बहुत बुरा काम है क्या ? पाँच रुपये रोज की कमाई यहाँ किस काम में होगी, भला ?"

सभी ने देखा, कैवर्तटोली का सच्चिदा, जो पाँच पैसे का कपूर लेने आया था, पूछ रहा है, "बताइये ?"

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

सच्चिदा चला गया तो चुरमुनियाँ ने ओठ बिदकाकर कहा, "इसके भी पंख फड़फड़ा रहे हैं।···ई भी किसी दिन उड़ेगा। फुर्र-र।"

हँहँहँहँ ! बहुत देर से रुकी हँसी छलक पड़ी। लोग बहुत देर तक उसकी बात पर हँसते रहे। चुरमुनियाँ की दादी पुकारने लगी, "अरी ओ चुरमुनियाँ !"

रात में चुरमुनियाँ बड़घरिया-हवेली में ही सोती है, गंगापुरवाली दादी के साथ। दादी सुबह-शाम चाय पीती है और चुरमुनियाँ को चाय की आदत पड़ गयी है। आज रविवार है। आज रात में दो बार चाय पियेगी, गंगापुरवाली दादी।

लेकिन आज चाय पीने का जी नहीं होता। चुरमुनियाँ चुपचाप अपनी कथरी में सिमट-सिकुड़कर अँगीठी पर चढ़ी केतली में पानी की 'गनगनाहट' सुन रही है। दादी ने दिल्लगी के सुर में पूछा, "आज तुमको किसका 'बिरह-बिजोग' सता रहा है जो इस तरह···?"

चुरमुनियाँ चिढ़ गयी, "मुझे अच्छी नहीं लगती तुम्हारी यह बानी।"

"ऐ-हे ! अच्छी बानी की नानी रे। आखिर तुझको हुआ क्या है ?"

क्या जवाब दे चुरमुनियाँ !

सभी, एक-एक कर गाँव छोड़कर जा रहे हैं। सच्चिदा भी चला जायेगा तो गाँव की 'कबड्डी' में अकेले पाँच जन को मारकर दाँव अब कौन जीतेगा ? आकाश छूनेवाले भुतहा-जामुन के पेड़ पर चढ़कर शहद का 'छत्ता' अब कौन काट सकेगा ? होली में जोगीड़ा और भड़ौआ गानेवाला—अखाड़े में ताल ठोकनेवाला···सच्चिदा भैया !

···पिछले साल से होली का रंग फीका पड़ रहा है। आठ-नौ साल की चुरमुनियाँ की नन्ही-सी-जान, न जाने किस संकट की छाया देखकर डर गयी है।—क्या रह जायेगा ?

चुरमुनियाँ गा-गाकर रोना चाहती है करुण सुर में—एक-एक पंक्ति को जोड़कर गाकर रोना जानती है, वह। धीमे सुर में उसने शुरू किया—'आ गे मइयो यो यो···।'

गंगापुरवाली दादी ने झिड़की दी, "ऐ-हे ! ढंग देखो इस रत्ती-भर

छिनाल का। नाक से रोने बैठी है भरी साँझ की बेला में। उठ, जाके देख बिजैया काहे पुकार रही है।"

"गोलपारक क्या, भैया ?"

गाँव के नौजवानों के तन-मन में 'फुरहरी' लग रही है, फुलकन की शहरी-गप सुनकर। मजेदार गप ! इस गप में एक ख़ास किस्म की गन्ध है—फुलकनी के 'बाबड़ी-केश' से जैसी गन्ध आती है, ठीक वैसी ही।

फुलकन फुलझड़ी उड़ा रहा है, "रजिन्नरनगर ? अब उसके बारे में कुछ मत पूछो, भैयो ! साला, ऐसा सहर कि लगता है कि धरती फोड़कर 'गोबर छत्ते' की तरह रोज मकान उगते जा रहे हैं। होगा नहीं भला ? वहाँ कोई भी काम हाथ से थोड़ो होता है ? सुर्खी कुटाई से लेकर सिमटी-सटाई और चूना-पुताई—सब कुछ 'मिशिन' से। बाल कटाने जाओ तो नाई एक ऐसा 'मिशिन' लगा देगा कि चटपट हजामत खत्म।···दस कदम पर एक-एक गोलपारक···।"

"गोलपारक क्या, भैया ?"

"अब क्या बतावें कि गोलपारक क्या है और कैसा होता है ? वह देखने पर ही समझोगे। मुँह की बोली में उतने किस्म का रंग कहाँ से लावेंगे ? समझो कि 'सीकी' की एक बहुत बड़ी सतरंगी 'डलिया' धरती पर रखी हुई है।···जब साँझ को लम्बे-लम्बे 'मरकली' के डण्डे छटाक-छटाक कर जल उठते हैं और साँझ के झुटपुटे में ठण्डी-ठण्डी हवा खाती हुई अधनंगी लड़कियाँ···लड़की तो नहीं, समझो कि 'फिलिइस्टार'···।"

"फिलि···क्या···?"

"धत्तेरे की ! फिलिइस्टार भी नहीं समझते ? अरे, पिक्चर की लड़की रे पिक्चर की !"

"पिक्चर···?"

"अब तुम लोगों को क्या समझावें !···माने, सिनेमा की छापी की लड़की। समझे ?"

"···पिक्चर की लड़की, छापी की लड़की ?" क्या-क्या बोलता है, फुलकन ? क्या था और क्या से क्या होकर लौटा है ! गाँव के नौजवानों की देह कसमसाने लगती है। फुलकन पटना में, 'रिक्शागाड़ी' खींचता है।···खींचता नहीं है, 'डलेवरी' करता है। फुलकन रिक्शा-डलेवर है।

"अच्छा ! रिक्शा-डलेवरी कितने दिनों में सीखा जा सकता है ?"

"सिखानेवाला उस्ताद हो और सीखनेवाला 'जेहन' का तेज हो तो तीन ही दिन में 'हैण्डिल' थिर हो जा सकता है।···असल 'चीजवा' है

'हैण्डिल' !"

···गाँव के लड़कों ने लक्ष्य किया, फुलकन ख़ास-ख़ास बात में 'वा' लगाकर बोलता है—टिकटिवा, कगजवा, बतवा, चीजवा।

फुलकन ने अब पॉकेट से 'छापियों' का लिफ़ाफ़ा निकाला, "और देखो देखनेवालो···!"

"ऐ हे ! बाप···! !"

"फिलि की छापी की तसवीर की लड़की ?"

"अँय ! राह-घाट में इसी तरह 'कच्छा-लँगोटा' पहनकर चलती है ? कोई कुछ कहता नहीं ?"

सभी 'लहेंगड़े-लौडों' के सिर पर छापियाँ नाचने लगीं। नाचती रहीं। ···रात में, सपने में भी छापी की लड़कियाँ नाचती रहीं और एकाध को 'भरमा' भी गयीं।

विजया को अचरज होता है ! गाँव ख़ाली होने का, गाँव टूटने का जितना दुख-दर्द इस छोटी-सी चुरमुनियाँ को है, उतना और किसी को नहीं। विजया इस गाँव में सात-आठ साल के बाद आयी है तो क्या ? है तो इसी गाँव की बेटी।

जब से पटना जाने की बात तय हुई है, अन्दर-ही-अन्दर वह फूट रही है—रजनीगन्धा के डण्ठलों की तरह। वह पटना नहीं जाना चाहती। वह इसी गाँव में रहना चाहती है।···बाबूजी की याद आती है, माँ की याद आती है। मिल-जुलकर आती है। कलेजा टूक-टूक होने लगता है तो इमली का बूढ़ा पेड़, बाग-बगीचे, पशु-पंछी—सभी उसे ढाढ़स बँधाते हैं। एक अदृश्य आंचल सिर पर हमेशा छाया रहता है। यहां आते ही लगता है, बाबूजी बाग में बैठे हैं, माँ रसोई-घर में भोजन बना रही है। इसीलिए, मामा का गाँव-घर कभी नहीं भाया उसे। अपने बाप के 'डिह' पर वह टूटी मड़ैया में भी सुख से रहेगी। लेकिन···।

"बिजैया'दी !"

···चुरमुनियाँ ने आज चोरी पकड़ ली, शायद ! विजया जब से आयी है, रोज़ रात में चुपचाप रोती है। रोज़ सुबह उठकर तकिये का गिलाफ़ बदल देती है।

"बिजैया'दी ?" चुरमुनियाँ अब उठकर बैठ गयी।

गंगापुरवाली दादी करवट लेती हुई बड़बड़ायी, "क्यों गुल मचाकर जगा रही है, नाहक ?"

विजया ने कनखी-नजर से देखा, चुरमुनियाँ सोयी हुई गंगापुरवाली

दादी का मुंह चिढ़ाती है, ओठों को बिदकाकर ! इसका अर्थ होता है, 'तुमको क्या ? दो-बार 'चाह' पी चुकी है। यहाँ बिजैया'दी कल से ही अन्न-पानी छोड़कर पड़ी हुई है।'

विजया ने देखा, चुरमुनियाँ उठकर बाहर गयी। आकाश के तारों को देखा। फिर बड़बड़ाती अन्दर आयी, "इह, अभी बहुत रात बाकी है।"

चुरमुनियाँ आकर विजया के पैताने में बैठ गयी और धीरे-धीरे उसके पैरों को सहलाने लगी।

···इस लड़की ने तो और भी जकड़ लिया है, माया की डोर से। उसने पैर समेटकर कहा, "यह क्या कर रही है ?"

चुरमुनियाँ हँसी, "थीं तो जगी हुई ही। फिर जवाब क्यों नहीं दिया ?"

"तुझे नींद नहीं आती ?"

चुरमुनियाँ ने गंगापुरवाली दादी की ओर दिखलाकर इशारे से कहा, "दादी की नाक इस तरह बोलती है मानो 'अरकसिया' आरा चला रहा हो !"

विजया को हंसी आयी। उसने डाँट बतायी, "क्यों झूठ बोलती है ? दादी की नाक आज एक बार भी नहीं बोली है।"

"तुम जगी नहीं थीं तो तुमने जाना कैसे ?" चुरमुनियाँ जीत गयी। "जानती है बिजैया'दी ? लगता है, सच्चिदा भी अब सहर का रास्ता पकड़ेगा।···जाओ भाई, सभी जाओ। यहाँ गांव में क्या है ? सहर में बायस्कोप है, सरकस है, सलीमा है···।"

"सोने भी देगी ?" विजया का जी हलका हुआ थोड़ा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"कल रात से तो और तुमको नहीं पाऊँगी। आज रात-भर सताऊँगी।"

कुछ देर तक चुप्पी छायी रही। दोनों ने लम्बी साँस ली।

"बिजैया'दी ?" चुरमुनियाँ सटकर सो गयी।

"क्या है रे ?"

"सहर के दुल्हे से सादी मत करना।"

विजया ठठाकर हँसना चाहती थी। उसने बहुत मुश्किल से अपनी हँसी को ज़ब्त करके पूछा, "सो क्यों ? शहर के लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?"

"मेरा क्या बिगाड़ेगा कोई !"

"तो, किसका बिगाड़ेगा ?"

"तुम्हारा···बिजैया'दी ! तू सादी ही मत करना। वे लोग तुमको कभी फिर इस गाँव में नहीं आने देंगे।"

"क्यों ?"

"जब गाँव का आदमी ही गाँव छोड़कर सहर भाग रहा है तो सहर का आदमी अपनी 'जनाना' को गाँव आने देगा भला ?"

'मुझे बाँध रखेंगे क्या ?"

"हाँ, बाँधकर रखेंगे। कमरे में बन्द करके।"

गंगापुरवाली दादी उठकर बैठ गयी और 'जाप' करने लगी। दोनों चुप हो गयीं।

गंगापुरवाली दादी बाहर गयी। विजया ने देखा, चुरमुनियाँ सो गयी है। वह धीरे-धीरे उसके झबरे बालों पर हाथ फेरने लगी।

सुबह उठकर बाहर निकलते ही चुरमुनियाँ चिल्लायी, "देख-देख बिजैया'दी, 'लीलकण्ठ' देख लो !"

गोढ़ी-टोले से एक ज़िन्दा मछली ले आयी चुरमुनियाँ और मिट्टी के बर्तन में पानी डालकर सामने रख दिया। फिर गाँव से उत्तर, बाबा जीन-पीर के थान की मिट्‌टी लाने गयी। सुबह से ही वह काम में मगन है, चुप-चाप। विजया के मामा ने कई बार छेड़कर चिढ़ाने की चेष्टा की। विजया ने भी कई बार चुटकी ली। मगर वह चुप रही। आज वह गंगापुरवाली दादी की गालियों का न जवाब देती है और न ओठों को बिदकाकर मुँह चिढ़ाती है।···कल कह रही थी, 'जानती है बिजैया'दी, तुम चली जाओगी तो कल से दादी गाली भी नहीं देगी। दिन-रात मुँह फुलाकर बैठी रहेगी या आँख मूँदकर जाप करेगी।'

दोपहर को जब विजया के मामा भोजन करने बैठे तो चुरमुनियाँ ने मुँह खोला, "मामा, बिजैया'दी को भी अपने सामने बैठकर खाने को कहिए। कल से ही मुँह में···कुछ···नहीं।"

लगा, बालू का बाँध अरराकर टूट गया। फफककर फूटकर रो पड़ी चुरमुनियाँ, "बिजैया'दी यहाँ से···भूखी-प्यासी···जायगी ई-ई-ई···!"

चुरमुनियाँ की बरसती हुई लाल-लाल आँखों में विजया ने कुछ देखा और वह सिहर पड़ी।···रोते-रोते मर जायेगी यह लड़की ! उसने रुँधे हुए गले से चुरमुनियाँ को समझाना शुरू किया, "चल ! पहले उठकर नहा ले ! मैं तुम्हारे साथ ही बैठकर खाऊँगी। उठ !"

विजया के मामा को अचरज हुआ। आज तक विजया ने किसी बच्चे-बच्ची को इस तरह दुलार-भरे सुर में नहीं पुचकारा। वे जल्दी-जल्दी भोजन

करके बाहर दालान पर चले गये।

विजया ने चुरमुनियाँ को नहलाया-धुलाया। गंगापुरवाली दादी ने बाहर निकलकर कई भद्दी गालियाँ दीं। किन्तु आज उसकी गाली सुनकर भी चुरमुनियाँ रोती है।··· कल से दादी गाली देना भी बन्द कर देगी।

खाने के समय विजया ने टोका, "पेट भर कर खा।"

चुरमुनियाँ बोली, "मैं भी वही कह रही थी तुमसे।"

फिर दोनों हँस पड़ीं। हँसते-हँसते रोने लगीं।

बाहर मामा ने सूचना देने के लहजे में कहा, "तीन बज रहे हैं।" अर्थात्, अब दो घण्टे और। साढ़े छह बजे की गाड़ी पकड़ने के लिए पाँच बजे ही घर से निकल पड़ना होगा।

चुरमुनियाँ बोली, "जमराज !"

विजया हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।···मन की बात कही है चुर-मुनियाँ ने।

देखते-ही-देखते सूरज ढल गया। अब, एक घण्टा और !

सामान वग़ैरह बाहर दालान में भेजकर विजया ने चुरमुनियाँ को 'पूजा-घर' में पुकारा। गंगापुरवाली दादी रसोई-घर में पकवान छान रही थी। चुरमुनियाँ अन्दर गयी।

"देख चुरमुन, इधर आ। इस घर में रोज झाड़ू-लेपन, साँझ-धूप-बाती देना मत भूलना।"

"तुमको कहना नहीं होगा। मैं घर के 'देवता-पित्तर' से लेकर गाँव के देवता-बाबा जीन-पीर के थान में रोज झाड़ू-बुहारी दूंगी—यही मनौती मैंने की है कि हे मैया गौरा पारबती !—कि हे बाबा जीन-पीर···हमारी बिजैया'दी को कोई सहर में बाँधकर नहीं रखे।···जिस दिन तू लौटकर आयगी, मैं देवी के 'गहवर' में नाचूंगी—सिर पर फूल की डलिया लेकर। तू लौट आवेगी तो सब कोई लौटकर आवेंगे। भूले-भटके, भागे-पराये—सभी आवेंगे। तू नहीं आयेगी तो इस गाँव में अब धरा ही क्या है ? जो भी है, वह भी एक दिन नहीं रहेगा। सिर्फ गाँव की निसानी, घरों के डिह···।"

"नहीं चुरमुन, ऐसी बात मत बोल।"

"तो, सत्त करो। मेरी देह छूकर कहो···।"

चुरमुनियाँ अपलक नेत्रों से विजया को देखती रही। विजया भी उसकी आँखों में डूब गयी, "चुरमुन, मैं शहर में नहीं रह सकूंगी। मैं लौट आऊँगी। यहीं जीऊँगी, यहीं मरूँगी···।"

"न: न:, 'जातरा' के समय कुलच्छन-भरी बात मत निकालो मुँह से।

···जानती है बिजैया'दी, मुझे कैसा लगता है, कहूँ ? ···लगता है, तू मेरी बेटी है और मैं तुम्हारी माँ। तू मुझे···माने···अपनी माँ को हमेसा के लिए छोड़कर जा रही है।"

विजया चौंकी, तनिक। उसने चुरमुनियाँ के चेहरे पर उमड़ने-घुमड़नेवाली घटाओं को देखा। वह बोली, "हाँ, तू मेरी माँ है।···तू ही मेरी माँ है।"

चुरमुनियाँ आनन्द-विभोर हो गयी, "बिजैया'दी, जी छोटा मत करो। रोओ मत ! ···कलेजा मजबूत करो।···'कहल-सुनल' माफ करना।··· अच्छा तो, पाँव लागों।"

बैलगाड़ियाँ चल पड़ीं। दालान के पास, गंगापुरवाली दादी के साथ चुरमुन टुकुर-टुकुर देखती रही···।

विजया उँगलियों पर जोड़ती है—ग्यारह महीने ! ग्यारह-तीसे, तीन सौ तीस···?

चुरमुनियाँ ने ठीक ही कहा था। सच्चिदा भी शहर आ गया है और एक प्रायवेट कम्पनी में दरबानी करता है। गाँव से जो भी आता है, विजया सबसे पहले चुरमुनियाँ के बारे में पूछती है; फिर पूछती है, "गाँव छोड़कर क्यों आये ?" सच्चिदा ने बताया, "चुरमुनियाँ तो पूरी 'भगतिन' बन गयी है। रोज भोर में नहाकर सिव मन्दिर जाती है।···लोग कहते हैं कि लड़की पर कोई 'देव' ने सवारी की है।"

···जिस दिन विवाह की बात पक्की हुई, विजया का कलेजा धड़का था। उसे चुरमुनियाँ की बात याद आयी थी। शादी के समय भी चुरमुनियाँ की बात मन में गूँज गयी थी।

···उसने ठीक ही कहा था। चुरमुनियाँ पर सचमुच कोई 'देव' की सवारी हुई है। विवाह के बाद, पाँच महीने भी नहीं बीते सुख-चैन से ! विजया फिर उँगलियों पर कुछ जोड़ती है।

···अब उसके पति इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित करने पर तुले हुए हैं कि विजया को गाँव के किसी लड़के से प्रेम था और उसी के विरह में वह विवाह के बाद से ही अर्ध-विक्षिप्त हो गयी है···।

···विजया के काका को वकील का नोटिस देकर पूछा गया है कि इस धोखेबाजी के लिए उस पर मुक़दमा क्यों नहीं चलाया जाये।

···विजया के पति पाँच हज़ार रुपये बतौर हर्जाना के वसूल करना चाहते हैं, उसके काका से ! ···विजया कुछ भी नहीं जानती। कुछ भी नहीं समझती। कुछ समझने की चेष्टा भी नहीं करती। सिर्फ़ उँगलियों पर कुछ

जोड़ती है। जोड़ती ही रहती है।

हिंगना-मठ के सूरतदास बाबाजी से एक पोस्टकार्ड लिखवाकर भेजा है, चुरमुनियाँ ने। कई डाकघरों में घूमती-भटकती हुई चिट्ठी विजया के पति को कल मिली है, "बिजैया'दी, कब आओगी ? अब नहीं ही आओगी।" इसके बाद सूरतदास बाबाजी ने अपनी ओर से लिखा है, "चुरमुन एक महीने से बिछावन पर लबेजान है और दिन-रात तुम्हारा नाम···।"

विजया अपने पति को कुछ भी नहीं समझा सकी कि यह चुरमुन कौन है, जिसकी बीमारी की खबर पाकर वह इस तरह बेचैन हो गयी। विजया की बस एक ही जिद—"मैं आज ही जाऊँगी। अभी···।"

तब, हमेशा की तरह उसे घर में बन्द करके कुण्डी चढ़ा दी गयी। किन्तु इस बार विजया न रोयी, न चीखी, न चिल्लायी, न दरवाज़ा पीटा, न बर्तन-बासन तोड़ा। करुण-कण्ठ से गिड़गिड़ाने लगी, "मैं आपके पैर पड़ती हूँ। आप जो भी कहियेगा, मानूंगी।···मुझे एक बार अपने साथ ही गाँव ले चलिये। मैं खड़ी-खड़ी उस निगोड़ी को देख लूँगी। मरे या जीये। मैं उलटे-पाँव वापस चली आऊँगी—आप ही के साथ।"

"यह चुरमुनियाँ आखिर है कौन ?"

"मेरे गाँव की···एक···पड़ोसी की लड़की।"

"लेकिन, लगता है तुम्हारी कोख की बेटी हो।"

"हाँ, वह मेरी माँ है। माँ है···।"

"मुझे देहाती-उल्लू मत समझना।"

हर दिन की तरह, विजया अचानक चुप हो गयी और आँख मूँदकर अपने गाँव-मैके रानीडिह भाग गयी। अब उसे कोई मारे, पीटे या काटे—घण्टों अपने गाँव में पड़ी रहेगी। वह···दूर से ही दिखलायी पड़ता है, गाँव का बूढ़ा इमली का पेड़। वह रहा बाबा जीन-पीर का थान।—वह रही चुरमुनियाँ।—रानीडिह की ऊँची ज़मीन पर···लाल माटीवाले खेत में··· अक्षत-सिन्दूर बिखेरे हुए हैं। हज़ारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में कचर-पचर कर रही हैं। चुरमुनियाँ सचमुच पखेरू हो गयी ? उड़कर आयी है, खंजन की तरह ! ···विजया की तलहथी पर एक नन्ही-सी जान वाली चिड़िया आकर बैठ गयी।···चुरमुन रे ! माँ···!

···डॉक्टर ने सूई गड़ायी या किसी ने छुरा भोंक दिया !—कोई मारे या काटे, विजया अपने गाँव से नहीं लौटेगी, अभी !

नैना जोगिन

रतनी ने मुझे देखा तो घुटने से ऊपर खोंसी हुई साड़ी की 'कोंचा' को जल्दी से नीचे गिरा लिया। सदा साइरेन की तरह गूँजने वाली उसकी आवाज़ कण्ठनली में ही अटक गयी। साड़ी की कोंचा नीचे गिराने की हड़बड़ी में उसका 'आँचर' भी उड़ गया।

उस सँकरी पगडण्डी पर, जिसके दोनों ओर झरबेरी के काँटेदार बाड़े लगे हों, अपनी 'भलमनसाहत' दिखलाने के लिए गरदन झुकाकर, आँख मूँद लेने के अलावा बस एक ही उपाय था। मैंने वही किया। अर्थात् पलट गया। मेरे पीठ-पीछे रतनी ने अपने उघड़े हुए 'तन-बदन' को ढँक लिया और उसके कण्ठ में अटकी हुई एक उग्र-अश्लील गाली पटाके की तरह फूट पड़ी।

मैं लौटकर अपने दरवाज़े पर आ गया और बैठकर रतनी की गालियाँ सुनने लगा।

नहीं, वह मुझे गाली नहीं दे रही थी। जिसकी बकरियों ने उसके 'पाट' का सत्यानाश किया है, उन बकरीवालियों को गालियाँ दे रही है वह। सारा गाँव, गाँव के बूढ़े-बच्चे-जवान, औरत-मर्द उसकी गालियाँ सुन रहे हैं। लेकिन···लेकिन क्यों, शायद सच ही, उनके सुनने और मेरे सुनने में फ़र्क़ है। मैं 'सचेतन रूपेण' अर्थात् जिस तरह रेडियो से प्रसारित महत्त्वपूर्ण वार्त्ताएँ सुनता हूँ, इन गालियों को सुन रहा हूँ। कान में उँगली डालने के ठीक विपरीत···एक-एक गाली को कान में डाल रहा हूँ। उसकी एक-एक गाली नंगी, अश्लील तसवीर बनाती है—'ब्लू फ़िल्म' के दृश्य।

···उदाहरण? उदाहरण देकर 'थाना-पुलिस-अदालत-फ़ौजदारी' को न्योतना नहीं चाहता।

रमेसर की माँ ने टोका शायद!

गाँव-भर की बकरीवालियों को सार्वजनिक गालियाँ दाग़ने के बाद रतनी ने रमेसर की माँ के 'प्रजास्थान' को लक्ष्य करके एक महास्थूल गाली दी। रमेसर की माँ ने टोका—"पहले खेत में चलकर देखो। एक भी पत्ती जो कहीं चरी हो···।"

रतनी अब तक इसी टोक की प्रतीक्षा में थी, शायद। अब उसकी बोली लयबद्ध हो गयी। वह प्रत्येक शब्द पर विशेष बल देकर, हाथ और उँगलियों से भाव बतलाकर कहने लगी कि वह पाट के खेत में जाकर क्या

देखेगी, अपना···?" (भले घर की लड़की होती तो कहती 'अपना सिर', किन्तु रतनी सिर के बदले में अपने अन्य हिस्से का नाम लेती है!)

इसके बाद बहुत देर तक रतनी की बातें सुनता रहा।···लेकिन उन्हें लिख नहीं सकता। वारण्ट का डर है।

किन्तु, रतनी के बारे में अब कुछ नहीं लिखा गया तो जीवन में कभी नहीं लिखा जायेगा। क्योंकि रतनी की गालियों में मर्माहत और अपमानित करने के अलावा उत्तेजित करने की तीव्र शक्ति है—यह मैं हलफ़ लेकर कह सकता हूँ।

रतनी का नाम 'नैना जोगिन' मैंने ही दिया था, एक दिन। तब वह सात-आठ साल की रही होगी।···नैना जोगिन? देहात में झाड़-फूंक करने-वाले ओझा गुणियों के हर 'मन्तर' के अन्तिम आखर में बन्धन लगाते हुए कहा जाता है—दुहाए इस्सर महादेव गौरा पारबती, नैना जोगिन··· इत्यादि। लगता है, कोई नैना जोगिन नाम की भैरवी ने इन मन्त्रों को सिद्ध किया था।

···सात साल की उम्र में ही रतनी ने गाँव के एक धनी, प्रतिष्ठित वृद्ध को 'फिलचक्कर' में डाल दिया था। उसकी बेवा माँ, वृद्ध की हवेली की नौकरानी थी। पंचायत में सात साल की रतनी ने अपना बयान जिस बुलन्दी और विस्तार से दिया था, कोई जन्मजात नैना जोगिन ही दे सकती थी! अब तो उसकी जामुन की तरह कजराई आँखें भी उसके नाम को सार्थक करती हैं, किन्तु सात साल की उम्र में ही इलाक़े में क़हर मचाने-वाली लड़की से आँख मिलाने की ताकत गाँव के किसी बहके हुए नौजवान में भी नहीं हुई कभी। उसको देखते ही आँखों के सामने पंचायत, थाना, पुलिस, फ़ौजदारी, अदालत, जेल नाचने लगते!

···रतनी की माँ सरकारी वकील को भी क़ानून सिखा आयी है।··· बहस कर आयी है सेशन-कोर्ट में!

सो, पिछले ग्यारह वर्षों में रतनी की माँ ने मुंह के ज़ोर से ही पन्द्रह एकड़ ज़मीन 'अरजा' है। पिछवाड़े में लीची के पेड़ हैं, दरवाज़े पर नीबू। सूद पर रुपये लगाती है। 'दस पैसा' हाथ में हैं और घर में अनाज भी। इसलिए अब गाँव की ज़मींदारिन भी है वही। गाँव के पुराने ज़मींदार और मालिक जब किसी रैयत पर नाराज होते तो इसी तरह गुस्सा उतारते थे। यानी उसकी बकरी, गाय वग़ैरह को परती जमीन पर से ही हाँककर दरवाज़े पर ले आते थे और गालियाँ देते, मार-पीट करते और अंगूठे का निशान लेकर ही खुश होते थे।

रमेसर की माँ कल हाट जाते समय लीची की टोकरी नहीं ले गयी

होकर, इसलिए रतनी और रतनी की माँ ने आज इस झगड़े का 'सिरजन' किया है—जान-बूझकर।

रमेसर का बाप मेरा हलवाहा है। रमेसर हमारे भैंसों का रखवाला यानी 'भैंसवार' है। रमेसर की माँ हमारे घर बर्तन-बासन माँजती है, धान कूटती है। इसलिए रतनी अब अपनी गालियों का मुख धीरे-धीरे हमारी ओर करने लगी—"तू किसका डर दिखलाती है? सहर से आये भतार का? रोज मांस-मछली और 'ब्रांडिल' पीकर तेरे (प्रजास्थान में) तेल बढ़ गया है! एँ···?"

मुझे अचानक रमेसर की माँ की गन्दो—हल्दी-प्याज़-लहसन पसीना-मैल की सम्मिलित गन्ध-भरी साड़ी की महक लगी। लगा, अब रतनी मुझे बेपर्द करेगी। नंगा करेगी। खुद अपने को उसने पिछले एक घण्टे में साठ बार नंगा किया है अर्थात् जब-जब उसने गाली का रुख हमारी ओर किया, हर बार यह कहना नहीं भूली कि रमेसर की माँ जिसका डर दिखलाती है वह 'मुनसा' (व्यक्ति!) रतनी का 'अथि' भी नहीं उखाड़ सकता!··· ऐसे-ऐसे 'मद्दकी मुनसा' को वह अपने 'अथि' में दाहिने-बाएँ बाँध रखेगी। ···बगुला-पंखी धोती-कुरता और घड़ी-छड़ी-जूता वाले शहरी छैलकनियाँ लोग ऊपर से लकदक और भीतर फोक होते हैं।···सफाचट मोंछ मुंडाए मुछमुंडा लोगों की सूरत देखकर भूलने वाली बेटो नहीं रतनी!···रतनी की माँ को इसका गुमान है कि बड़े-बड़े वकील-मुख़्तार के बेटों को देखकर भी उसकी बेटी की 'अथि' अर्थात् जीभ नहीं पनियायी कभी। डकार भी नहीं किया।

रतनी अपने आँगन से निकल आयी थी। रमेसर की माँ ने कोई जवाब दिया होगा शायद। अब रतनी और रतनी की माँ दोनों मिलकर नाचने लगीं। उसका घर हमारे दरवाज़े से दस रस्सी दूर है, लेकिन सामने है। मैं रतनी और रतनी की माँ का नाच देखने को बाध्य था। रतनी की काव्य-प्रतिभा ने मुझे अचम्भे में डाल दिया। उसकी टटकी और तुरत रची हुई पंक्तियों में वह सब-कुछ था जो कविता में होता है—बिम्ब, प्रतीक, व्यंग्य तथा गन्ध! बतौर बानगी—अटना का साहब और पटना की मेम, रात खाये मुरगी और सुबह करे नेम, तेरा झुमका और नथिया और साबुन महकौवा—तू पान में जरदा खाये नखलौवा···।

रतनी और रतनी की माँ की यह काव्य-नाटिका समाप्त हुई तो मैंने दरवाज़े पर बैठे गाँव के दो-तीन नौजवानों की ओर देखा। मेरा चेहरा तमतमाया हुआ था, किन्तु वे निर्विकार और निर्मल मुद्रा में थे। परिवार तथा 'पट्टीदार' के 'मर्द पुरुषों' की ओर देखा, वे पान चबा रहे थे, हुक्का

गुड़गुड़ा रहे थे। लगता था, इन लोगों ने रतनी की गालियाँ सुनीं ही नहीं। मैंने जब भोजन के समय बात चलायी तो परिवार के एक व्यक्ति ने (जिन्हें शहर के नाम से ही जड़ैया बुख़ार धर दबाता है) हँसकर कहा, "शहर से आने के बाद आप कुछ दिन तक ऐसी असभ्यता ही करेंगे, यह हमें मालूम है। इन छोटे लोगों की गाली पर इस तरह ध्यान कोई भलामानुस नहीं देता। इस तरह गालियों के अर्थ को प्याज़ के छिलके की तरह उतार-उतारकर समझने का क्या मतलब! शहर में क्या औरतें गाली नहीं देतीं?"

अजब इन्साफ़ है—गाली सुनकर समझना अन्याय है! असभ्यता है! मन में मैल है मेरे?

अश्लील और घिनौने मुक़दमे के कारण रतनी की बदनामी बचपन से ही फैलती गयी। जवान हुई तो बदनामियाँ भी जवान हुईं। फलतः गाँव के हिसाब से 'पक' जाने पर भी कोई दूल्हा नहीं मिला। मिलता भी तो 'घर-जमाई' होकर नहीं रहना चाहता था। दो साल हुए, एक निमोंछिया जवान न जाने किस गाँव से आया साँझ में और रात में भात खाने के लिए घर के अन्दर गया तो रतनी की माँ एक हाथ में सिन्दूर की पुड़िया और दूसरे में फरसा लेकर खड़ी थी—"छदोड़ी की सीथ में सिन्दूर डालो, नहीं तो अभी हल्ला करती हूँ, घर में चोर घुसा है।"···तो सींकिया नौजवान जो हर सुबह को शीशम की कोमल पत्तियाँ तोड़कर ले जाता है, वही है रतनी का रतन-धन!

पूछताछ करने पर पता चला कि हाल ही में एक रात को रतनी ने इसको लात से मारा; घर से निकालकर चिल्लाने लगी, "पूछे कोई इससे कि इतना दूध, मलाई, दही, मांस-मछली, कबूतर तिस पर 'धात-पुष्टई' दवा, तो अलान-ढेकान खाकर भी जिस 'मर्द' को आधी पहर रात को हँफनी शुरू हो, उसको क्या कहा जाय? लोग 'दोख' देते है मेरे कोख को, कि रतनी बाँझ है। निमकहराम और किसको कहते हैं?"

मैं अब इसे मानसिक विकार मानने लगा हूँ। अब तक 'सामाजिक' समझ रहा था कि छोटी जात की औरत गाँव की मालकिन हुई है···।

नहीं, सामाजिक भी है। मेरे पट्टीदार के एक भाई ने कहा, "कोई उसका क्या बिगाड़ सकता है! गाँव के सभी किस्म के चोर अर्थात् लत्ती-पत्ती और सिन्नाजोर दिन डूबते ही उसके आँगन में जमा हो जाते हैं। इलाके का मशहूर डकैत परमेसरा रतनी की बात पर उठता-बैठता है। मुखिया और सरपंच रतनी की माँ के खिलाफ चूं भी नहीं कर सकते।··· रतनी की माँ से कोई 'रार' मोल नहीं लेना चाहता। इसीलिए, दिन-भर

गाँव के हर टोले में दोनों घूम-घूमकर झगड़ा करती फिरती हैं।···रतनी अकेली खस्सी (बकरे) को जिबह कर देती है; रतनी की माँ चोरी का माल ख़रीदती है—थाली-लोटा-गिलास···।"

सुबह को मालूम हुआ, शहर से लाया हुआ मेरा प्रेस्टिज प्रेशर कुकर गायब है। दोपहर के बाद धोती गुम! रात में रमेसर की माँ फिसफिसाकर आँगन में कह रही थी—"रतनी बोलती थी कि 'सिध' करके छोड़ेगी इस बार!···उस दिन इस तरह पीठ दिखाना अच्छा नहीं हुआ, शायद!"

और यह सब इसलिए कि मैंने रतनी के तथाकथित 'पुरुष' को बुलाकर उसका पता-ठिकाना पूछा था, और उसको समझाया था कि गाँव में अब एक नयी बात चल पड़ी है। उसने बीवी की मार सह ली—नतीजा यह हुआ है कि कई औरतों ने अपने घरवाले को पीटा इस गाँव में···।

रतनी ने चिल्ला-चिल्लाकर सारे गाँव के लोगों को सूचना देने के लहजे में सुनाया था, "सुन लो हो लोगो! अब इस गाँव में फिर एक सेशन मोकदमा उठेगा सो जान लो। ई शहर का कानून यहाँ छाँटने आया है! कोई अपने घरवाले को लात मारे या 'चुम्मा' ले, दूसरा कोई बोलनेवाला कौन? देहात से लेकर शहर तक तो 'छुछुआते' फिरता है, काहे न कोई 'मौगी' मुँह में चुम्मा लेती है?"

मैं रोज़ हारता, रतनी रोज जीतती। मुझे स्वजनों ने सतर्क किया—साँझ होने के पहले ही मैदान से घर लौट आया करूँ। किसी ने शहर लौट जाने की सलाह दी। मुझे लगता, रोज़ ताल ठोककर एक नंगी औरत-पहलवान मुझे चुनौती देती है। थप्पड़-घूँसे चलाती है। भागूँगा तो गाँव की सीमा के बाहर तक पीछे-पीछे फटा कनस्तर पीटती और बकरे की तरह 'बो बो बो बो' करती जायेगी, गाँव भर के लोग तालियाँ बजाकर हँसेंगे।

मुझे हथियार डाल देना चाहिए। एक औरत, सो भी ऐसी औरत से टकराना बुद्धिमानी नहीं। एक सप्ताह तक चोरी-चपाटी करवाने के बाद एक नया उत्पात शुरू किया। रात-भर हमारे दरवाज़े और आँगन में हड्डियों की 'बरखा' होता।···नंगी औरत ताल ठोककर ललकार रही है—मर्द का बेटा तो मैदान में आ···!

मैदान में मुझे उतरना ही पड़ा। रात में नींद खुली। दरवाज़े के सामने जो नया बाग हम लोगों ने लगाया है, उसमें भैंस का बच्चा घुस गया है, शायद! मैं धीरे-धीरे बाड़े के पास गया। पट्ट···!

अमलतास के कोमल पौधे को तोड़कर, गुलमोहर की ओर बढ़ते हुए हाथ को मैंने 'खप्प' से पकड़ा। कलम-घिसाई के बावजूद पंजे की पकड़ में अब तक ख़म बचा हुआ था!···"क्यों?" मैंने बहुत धीरे से पूछा।

"छोड़िए!" जवाब भी उसी अन्दाज़ में मिला।

"क्यों तोड़ा है? क्या मिला? क्यों?"

"तोड़ा तो क्या कर लीजियेगा?"

"मैं लोगों को पुकारता हूँ।"

"खुद फँस जाइयेगा।···हाथ छोड़िए!"

"फँसा के देखो। मैं नहीं डरता हूँ।"

"क्या चाहते हैं आप?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि तुम···तुम इस तरह मेरे पीछे क्यों पड़ी हो? इस पौधे को क्यों तोड़ा है?"

"वह तो पौधा ही है। जी तो आपको ही तोड़ देने को करता है।···हाथ छोड़िए!"

मैंने देखा उसकी कनपटी पर एक साँप का फण—फण नहीं, भाला! बरछे की फली! मैंने हाथ छोड़ दिया। वह भागी नहीं, खड़ी रही। मुझे चुप और अवाक् देखकर बोली, "चिल्लाऊँ?"

"कोढ़ी डरावे थूक से!"

रतनी हँसी। तारों की रोशनी में उसकी हँसी झिलमिलायी।

"जाइए, थोड़ा 'ब्रांडिल' और चढ़ाइये!"

"तुम—तुम नैना जोगिन···!"

"हाँ, नैना जोगिन ही हूँ। तब? माधो बाबू···" अब रतनी क़रीब सट आयी, "मेरा क्या कसूर जो बारह साल से बनबास दिये हुए हैं आप लोग! उस बूढ़े को करनी का फल चखाया तो क्या बेजा किया? मैं उस समय उसकी पोती की उम्र की थी।···सो, आप लोगों ने खास कर आप दोनों भाइयों ने हम लोगों को 'रण्डी' से बदतर कर दिया।···आखिर आपके जन्म के दिन रतनी की माँ ही सौर घर में थी—पाँच साल तक आप रतनी की माँ की गोद और आँचर में रहे, और आपकी आँख में जरा भी पानी नहीं।···मैं जवान हुई, आप लोगों ने आँख उठाकर कभी देखा नहीं कि आखिर गाँव-घर की एक लड़की ऐसी जवान हो गयी और शादी क्यों नहीं होती?···अब इस बार आये हैं तो कभी आपके मन में यह नहीं हुआ कि रतनी की शादी हुए ढाई साल हो रहे हैं और रतनी को कोई बच्चा क्यों न हुआ? अटना-पटना-दिल्ली-दरभंगा में आपके इतने डागडर-डागडरनी जान-पहचान के हैं—आखिर, रतनी की माँ का दूध साल-भर तक पिया है, आपने। रतनी की माँ को बहुत दिन तक आपने माँ कहा था, लोगों को याद है।···दूध का भी तो एक सम्बन्ध होता है।"

मैंने कहा, "रतनी! रमेसर जग गया है।···मैं कुछ नहीं समझता। तुम

जाओ। कोई देख लेगा।"

"देखकर क्या कर लेगा ?"

रतनी ने बेलाग-बेलौस एक अश्लील बात अँधेरे में, आग की गोली की तरह उगल दी—"देखकर आपका 'अथि' और मेरा 'अथि' उखाड़ लेगा ?···बोलिये, मैं पापिन हूँ ? मैं अछूत हूँ ? रण्डी हूँ ? जो भी हूँ, आपकी हवेली में पली हूँ···तकदीर का फेर···माधो बाबू···रतनी नाम भी आपके ही बाबूजी का दिया है। आपने उसको बिगाड़कर नैना जोगिन दिया ! किस कसूर पर ? आप लोगों का क्या बिगाड़ा था रतनी की माँ ने जो इस तरह बोल-चाल, उठ-बैठ एकदम बन्द !"

मैंने धीरे से कहा, "ऐसे गाँव में अब कोई भला आदमी कैसे रह सकता है ?"

लगा, नागिन को ठेस लगी; फुफकार उठी—"भला-आदमी ? भला आदमी ? भला आदमी को 'पूछ-सिंग' होता है ?"

"नहीं होता है। इसलिए···।"

पूछ-सिंग ··· जानवर ··· औरत-मर्द···नंगे···बेपर्द ···अन्धकार··· प्रकाश···गुर्राहट···आँखों की चमक···बड़े-बड़े नाखून···बिल्ली···शिवा शैवा···गृद्धासया···योनिस्या भगिनी···भोगिनी···महांकुश···स्वरूप··· छिन्नमस्ता अट्टहास···!

अट्टहास सुनकर चौंका—रतनी कहाँ है ? वह तो साक्षात् नील सरस्वती थी !

इस बार गाँव में, गाँव के आसपास, यह ख़बर बहुत तेज़ी से फैली कि नैना जोगिन का 'जोग' माधो बाबू पर खूब ठिकाने से लगा है !···रमेसर की माँ को एक दिन खोयी हुई चीज़ें टोकरी में मिलीं—घर में ही। रतनी ने माधो बाबू को 'भेड़ा' बनाया है तो माधोबाबू ने रतनी का 'विषदन्त' उखाड़ दिया है। बोले तो अब एक भी गाली—गन्दी या अच्छी ?

रतनी और उसके नामर्द मर्द को मैं अपने साथ शहर लेता आया हूँ। डॉक्टर को अचरज होता है कि मैं रतनी के लिए इतना चिन्तित क्यों हूँ ! उन्हें कैसे समझाऊँ कि यदि रतनी को कोई बच्चा नहीं हुआ तो वह··· वह मेरे बाग़ के हर पौधे तोड़ देगी; गाँव के सभी पेड़-पौधों को तोड़ देगी; गाँव के सभी लोगों को तोड़ेगी; गाँव में हड्डियाँ बरसावेगी; नंगी नाचेगी, अश्लील गालियाँ देती हुई सभी को ललकारेगी ! वह साँवली सलोनी लम्बी स्वरूप पूर्ण यौवना नैना जोगिन ! जाँच-पड़ताल के समय जब रतनी की लम्बाई नापी जाती है, वजन लिया जाता है, पेट टटोला जाता है··· तो···मेडिकल कॉलेज की लेडी स्टूडेण्ट्स से लेकर डॉक्टर तक हैरत से मुँह बाये रहते हैं !···औरत, ऐसी ?

पाँच दिन हुए हैं, पड़ोस के मलहोत्रा साहब की नौकरानी को दो दिन वह फ़्लैट के नीचे उठाकर फेंकने की धमकी दे चुकी है।···शहर की सड़ी हुई गरमी को रोज़ पाँच अश्लील गालियाँ देती है !

उसका घर वाला गाँव लौटने को कुनमुनाता है तो वह घुड़क देती है ···"हाँ, जब आ गयी हूँ तो यहाँ हो चाहे लहेरिया सराय, चाहे कलकत्ता··· जहाँ से हो, कोख तो भर के लौटूँगी, गाँव तुमको जाना हो तो माधो बाबू टिकस कटाकर गाड़ी में बैठा देंगे। मैं किस मुँह से लौटूँगी खाली···?"

कोई जादू जानती है सचमुच रतनी !

कोई शब्द उसके मुँह में अश्लील नहीं लगता !

पंचलाइट

पिछले पन्द्रह महीने से दण्ड-जुरमाने के पैसे जमा करके महतो टोली के पंचों ने पेट्रोमेक्स खरीदा है इस बार, रामनवमी के मेले में। गाँव में सब मिलाकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग 'सभाचट्टी' है। सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, सतरंजी और पेट्रोमेक्स हैं—पेट्रोमेक्स, जिसे गाँववाले पंचलाइट कहते हैं।

पंचलाइट खरीदने के बाद पंचों ने मेले में ही तय किया—दस रुपये जो बच गये हैं, इससे पूजा की सामग्री खरीद ली जाये—बिना नेम-टेम के कल-कब्ज़ेवाली चीज़ का पुन्याह नहीं करना चाहिए। अंग्रेज़बहादुर के राज में भी पुल बनाने से पहले बलि दी जाती थी।

मेले से सभी पंच दिन-दहाड़े ही गाँव लौटे; सबसे आगे पंचायत का छड़ीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर लेकर और उसके पीछे सरदार दीवान और पंच वगैरह। गाँव के बाहर ही ब्राह्मणटोले के फुटंगी झा ने टोक दिया—"कितने में लालटेन खरीद हुआ महतो ?"

"···देखते नहीं हैं, पंचलैट है ! बामनटोली के लोग ऐसे ही ताब करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलैट को लालटेन !"

टोले-भर के लोग जमा हो गये। औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सभी काम-काज छोड़कर दौड़े आये, "चल रे चल! अपना पंचलैट आया है, पंचलैट!"

छड़ीदार अगनू महतो रह-रहकर लोगों को चेतावनी देने लगा—"हाँ, दूर से, ज़रा दूर से! छू-छा मत करो, ठेस न लगे!"

सरदार ने अपनी स्त्री से कहा, "साँझ को पूजा होगी; जल्दी से नहा-धोकर चौका-पीढ़ी लगाओ।"

टोले की कीर्तन-मण्डली के मूलगैन ने अपने भगतिया पच्छकों को समझाकर कहा, "देखो, आज पंचलैट की रोशनी में कीर्तन होगा। बेताले लोगों से पहले ही कह देता हूँ, आज यदि आखर धरने में डेढ़-बेढ़ हुआ, तो दूसरे दिन से एकदम बैकाट!"

औरतों की मण्डली में गुलरी काकी गोसाईं का गीत गुनगुनाने लगी। छोटे-छोटे बच्चों ने उत्साह के मारे बेवजह शोरगुल मचाना शुरू किया।

सूरज डूबने के एक घण्टा पहले से ही टोले-भर के लोग सरदार के दरवाज़े पर आकर जमा हो गये—पंचलैट, पंचलैट!

पंचलैट के सिवा और कोई गप नहीं, कोई दूसरी बात नहीं। सरदार ने गुड़गुड़ी पीते हुए कहा, "दूकानदार ने पहले सुनाया, पूरे पाँच कौड़ी पाँच रुपया। मैंने कहा कि दूकानदार साहेब, यह मत समझिए कि हम लोग एकदम देहाती हैं। बहुत-बहुत पंचलैट देखा है। इसके बाद दूकानदार मेरा मुँह देखने लगा। बोला, लगता है आप जाति के सरदार हैं! ठीक है, जब आप सरदार होकर खुद पंचलैट खरीदने आये हैं तो जाइए, पूरे पाँच कौड़ी में आपको दे रहे हैं।"

दीवानजी ने कहा, "अलबत्ता चेहरा परखनेवाला दूकानदार है। पंचलैट का बक्सा दूकान का नौकर देना नहीं चाहता था। मैंने कहा, देखिए दूकानदार साहेब, बिना बक्सा पंचलैट कैसे ले जायेंगे! दूकानदार ने नौकर को डाँटते हुए कहा, क्यों रे! दीवानजी की आँख के आगे 'धुरखेल' करता है; दे दो बक्सा!"

टोले के लोगों ने अपने सरदार और दीवान को श्रद्धा-भरी निगाहों से देखा। छड़ीदार ने औरतों की मण्डली में सुनाया—"रास्ते में सन्न-सन्न बोलता था पंचलैट!"

लेकिन···ऐन मौके पर 'लेकिन' लग गया! रूदल साह बनिये की दूकान से तीन बोतल किरासन तेल आया और सवाल पैदा हुआ, पंचलैट को जलायेगा कौन!

यह बात पहले किसी के दिमाग में नहीं आयी थी। पंचलैट खरीदने

के पहले किसी ने न सोचा। ख़रीदने के बाद भी नहीं। अब, पूजा की सामग्री चौके पर सजी हुई है, कीर्तनिया लोग खोल-ढोल-करताल खोलकर बैठे हैं और पंचलैट पड़ा हुआ है। गाँववालों ने आज तक कोई ऐसी चीज नहीं ख़रीदी, जिसमें जलाने-बुझाने का झंझट हो। कहावत है न, भाई रे, गाय लूँ? तो दुहे कौन? ···लो मज़ा! अब इस कल-कब्ज़ेवाली चीज़ को कौन बाले!

यह बात नहीं कि गाँव-भर में कोई पंचलैट बालनेवाला नहीं। हरेक पंचायत में पंचलैट है, उसके जलानेवाले जानकार हैं। लेकिन सवाल है कि पहली बार नेम-टेम करके, शुभ-लाभ करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलैट जलेगा? इससे तो अच्छा है कि पंचलैट पड़ा रहे। जिन्दगी-भर ताना कौन सहे! बात-बात में दूसरे टोले के लोग कूट करेंगे—तुम लोगों का पंचलैट पहली बार दूसरे के हाथ से···! न, न! पंचायत की इज़्ज़त का सवाल है। दूसरे टोले के लोगों से मत कहिए।

चारों ओर उदासी छा गयी। अँधेरा बढ़ने लगा। किसी ने अपने घर में आज ढिबरी भी नहीं जलायी थी।···आज पंचलैट के सामने ढिबरी कौन बालता है!

सब किये-कराये पर पानी फिर रहा था। सरदार, दीवान और छड़ीदार के मुँह में बोली नहीं। पंचों के चेहरे उतर गये थे। किसी ने दबी हुई आवाज में कहा, "कल-कब्ज़ेवाली चीज़ का नखरा बहुत बड़ा होता है।"

एक नौजवान ने आकर सूचना दी—"राजपूत टोली के लोग हँसते-हँसते पागल हो रहे हैं। कहते हैं, कान पकड़कर पंचलैट के सामने पाँच बार उठो-बैठो, तुरन्त जलने लगेगा।"

पंचों ने सुनकर मन-ही-मन कहा, "भगवान ने हँसने का मौका दिया है, हँसेंगे नहीं?" एक बूढ़े ने आकर ख़बर दी, "रूदल साह बनिया भारी बतंगड़ आदमी है। कह रहा है, पंचलैट का पम्पू ज़रा होशियारी से देना!"

गुलरी काकी की बेटी मुनरी के मुँह में बार-बार एक बात आकर मन में लौट जाती है। वह कैसे बोले? वह जानती है कि गोधन पंचलैट बालना जानता है। लेकिन, गोधन का हुक्का-पानी पंचायत से बन्द है। मुनरी की माँ ने पंचायत में फ़रियाद की थी कि गोधन रोज उसकी बेटी को देखकर 'सलम-सलम' वाला सलीमा का गीत गाता है—'हम तुमसे मोहोब्बत करके सलम!' पंचों की निगाह पर गोधन बहुत दिन से चढ़ा हुआ था। दूसरे गाँव से आकर बसा है गोधन, और अब तक टोले के पंचों को पान-सुपारी

खाने के लिए भी कुछ नहीं दिया। परवाह ही नहीं करता है। बस, पंचों को मौका मिला। दस रुपया जुरमाना ! न देने से हुक्का-पानी बन्द।···आज तक गोधन पंचायत से बाहर है। उससे कैसे कहा जाये ! मुनरी उसका नाम कैसे ले ? और उधर जाति का पानी उतर रहा है।

मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली कनेली के कान में बात डाल दी—"कनेली !···चिगो, चिध-ऽ-ऽ, चिन···!" कनेली मुस्कराकर रह गयी—"गोधन तो बन्द है !" मुनरी बोली, "तू कह तो सरदार से !"

"गोधन जानता है पंचलैट बालना।" कनेली बोली।

"कौन, गोधना ? जानता है बालना ! लेकिन···।"

सरदार ने दीवान की ओर देखा और दीवान ने पंचों की ओर। पंचों ने एकमत होकर हुक्का-पानी बन्द किया है। सलीमा का गीत गाकर आंख का इशारा मारनेवाले गोधन से गाँव-भर के लोग नाराज़ थे। सरदार ने कहा, "जाति की बन्दिश क्या, जबकि जाति की इज्ज़त ही पानी में बही जा रही है ! क्यों जी दीवान ?"

दीवान ने कहा, "ठीक है।"

पंचों ने भी एक स्वर में कहा, "ठीक है। गोधन को खोल दिया जाये।"

सरदार ने छड़ीदार को भेजा। छड़ीदार वापस आकर बोला, "गोधन आने को राज़ी नहीं हो रहा है। कहता है, पंचों की क्या परतीत है ? कोई कल-कब्ज़ा बिगड़ गया तो मुझे दण्ड-जुरमाना भरना पड़ेगा।"

छड़ीदार ने रोनी सूरत बनाकर कहा, "किसी तरह गोधन को राजी करवाइए, नहीं तो कल से गाँव में मुँह दिखाना मुश्किल हो जायेगा।"

गुलरी काकी बोली, "ज़रा मैं देखूँ कहके !"

गुलरी काकी उठकर गोधन के झोंपड़े की ओर गयी और गोधन को मना लायी। सभी के चेहरे पर नयी आशा की रोशनी चमकी। गोधन चुपचाप पंचलैट में तेल भरने लगा। सरदार की स्त्री ने पूजा की सामग्री के पास चक्कर काटती हुई बिल्ली को भगाया। कीर्तन-मण्डली का मूलगैन मुरछल के बालों को सँवारने लगा। गोधन ने पूछा, "इसपिरिट कहाँ है ? बिना इसपिरिट के कैसे जलेगा ?"

···लो मजा ! अब यह दूसरा बखेड़ा खड़ा हुआ ! सभी ने मन-ही-मन सरदार, दीवान और पचों की बुद्धि पर अविश्वास प्रकट किया—बिना बूझे-समझे काम करते हैं ये लोग ! उपस्थित जन-समूह में फिर मायूसी छा गयी। लेकिन, गोधन बड़ा होशियार लडका है। बिना स्पिरिट के ही पंचलैट जलायेगा—"थोड़ा गरी का तेल ला दो !" मुनरी दौड़कर

गयी और एक मलसी गरी का तेल ले आयी। गोधन पंचलैट में पम्प देने लगा।

पंचलैट की रेशमी थैली में धीरे-धीरे रोशनी आने लगी। गोधन कभी मुँह से फूंकता, कभी पंचलैट की चाबी घुमाता। थोड़ी देर के बाद पंचलैट से सनसनाहट की आवाज़ निकलने लगी और रोशनी बढ़ती गयी; लोगों के दिल का मैल दूर हो गया। गोधन बड़ा काबिल लड़का है !

अन्त में पंचलाइट की रोशनी से सारी टोली जगमगा उठी तो कीर्तनिया लोगों ने एक स्वर में, महावीर स्वामी की जय-ध्वनि के साथ कीर्तन शुरू कर दिया। पंचलैट की रोशनी में सभी के मुस्कराते हुए चेहरे स्पष्ट हो गये। गोधन ने सबका दिल जीत लिया। मुनरी ने हसरतभरी निगाह से गोधन की ओर देखा। आँखें चार हुईं और आँखों-ही-आँखों में बातें हुईं—'कहा-सुना माफ़ करना ! मेरा क्या कसूर !'

सरदार ने गोधन को बहुत प्यार से पास बुलाकर कहा, "तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ़। खूब गाओ सलीमा का गाना।"

गुलरी काकी बोली, "आज रात मेरे घर में खाना गोधन !"

गोधन ने फिर एक बार मुनरी की ओर देखा। मुनरी की पलकें झुक गयीं।

कीर्तनिया लोगों ने एक कीर्तन समाप्त कर जय-ध्वनि की—'जय हो ! जय हो !'···पंचलैट के प्रकाश में पेड़-पौधों का पत्ता-पत्ता पुलकित हो रहा था।

एक अकहानी का सुपात्र

पिछले कई वर्षों से लगातार यह सुनते-सुनते कि अब 'कहानी' नाम की कोई चीज़ दुनिया में ऐसे नहीं रह गयी है—मुझे भी विश्वास-सा हो चला था कि कहानी सचमुच मर गयी। हमारा मौजूदा समाज 'कहानीहीन' हो गया है, हठात्। कहीं, किसी घर के किसी कोने में भी कहानी नहीं घट रही। सभी लोग, अकहानीमय जीवन बिना किसी परेशानी या दुःख के जीए जा रहे हैं। फलतः, समाज के सभी कहानीकार बेकार हो रहे हैं, हुए

जा रहे हैं।···मैंने इन तथ्यों के आधार पर अकहानी की एक मोटी-सी परिभाषा समझ ली थी। बेकार कथाकार बेकारी के क्षण में जो कुछ भी गढ़ता है, उसे अकहानी कहते हैं।

किन्तु, ऐसे ही दुर्दिन में हठात् एक दिन मेरी छोटेलाल से मुलाकात हो गयी और मेरा सारा भ्रम दूर हो गया। यानी मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि कहानी के मरने की ख़बर ग़लत थी। छोटेलाल के प्रथम दर्शन और संभाषण से ही मैं आश्वस्त हो गया—हमारा समाज अभी पूर्णत: कथाहीन नहीं हो पाया है। छोटेलाल का समस्त अस्तित्व ही मुझे कहानी से ओत-प्रोत प्रतीत हुआ।···जी नहीं, छोटेलाल कोई कथाकार नहीं—नगर में खोया हुआ एक ग्राम्य-कथापात्र है। और जब तक छोटेलाल जैसे सुपात्र जीवित रहेंगे, कहानी मरकर भी जी जाया करेगी।

मेरी छोटेलाल से मुलाकात अपने नगर के नुक्कड़ पर पिछले साल—ठीक श्रावणी पूर्णिमा के दिन हुई थी, पान की दूकान पर। वह बार-बार पानवाले का नाम ले-लेकर जल्दी से आठ 'खिल्ली' मीठा पान लपेटने को कह रहा था—"ए त्रिस्ना! लपेट न यार···!"

नगर के ऐसे गृहसेवकों के साधारण चरित्रों से मेरा साधारण परिचय है। अत:, उन्हें पहली ही निगाह में पहचान लेता हूँ और वे भी मेरे चेहरे-मोहरे और मेरी बातचीत से समझ गये हैं कि मैं उन्हीं की कोटि का जीव हूँ। किन्तु, छोटेलाल को पहचानने में मैंने ग़लती की—यह मैं स्वीकार करता हूँ। पानवाले ने जब झुँझलाकर पहले के बाक़ी-बकाए का तकादा किया, तो वह तनिक भी अप्रतिभ नहीं हुआ। बोला—"अरे यार, बाक़ी-बकाया लेकर कोई भागा जा रहा है? पहले मोड़ न आठ मीठा पत्ती···!"

ऐसे अवसरों पर मैं अक्सर कुछ नहीं बोलता। लेकिन, उस दिन बोल पड़ा—"अजी, बाक़ी-बकाया का हिसाब-किताब मालिक से करना। नौकर से क्यों उलझ रहे हो बेकार···"

कि छोटेलाल ने चोट खाये हुए प्राणी की तरह मुझ पर प्रत्याक्रमण किया—"ज़रा आदमी देखकर बात कीजिये साहेब। यहाँ कोई किसी का नौकर नहीं···।"

पानवाले लड़के ने कहा—"परमेस्वर बाबू के छोटे भाई हैं।"

मैंने तुरन्त छोटेलालजी से क्षमा-याचना की—"माफ़ कीजिये भाई साहब!"

पान की दूकान से सटी हुई एक छोटी-सी चाय की दुकान है जो डबल-रोटी और बिस्कुट के अलावा उबले हुए अंडे भी बेचता है। मैं अपने उन दोस्तों को, जो मेरे कुत्ते से घबराते हैं अथवा जिनकी बोली सुनकर मेरा

कुत्ता चिढ़कर भूँकने लगता है अथवा जो तिमंज़िले की सीढ़ियों पर चढ़ने से लाचार होते हैं या जिन्हें अपने फ्लैट में ले चलने में मैं लाचार होता हूँ—इसी चाय की दुकान पर लाकर 'चाय पान सिगरेट आदि' से सत्कार करता हुआ उनका अबाध संभाषण सुनता रहता हूँ।

छोटेलाल ने मुझे सिर से पैर तक तजवीज करते हुए पूछा—"आप कौन हैं?"

मैंने अपना नाम बतलाया और यह भी कि मैं तीन नम्बर रोड के एक वकील साहब का क्लर्क हूँ। छोटेलाल बोला—"सीधे मोहरिल कहते लाज लगती है, इसीलिए कलर्क···।"

छोटेलाल मुझ पर आक्रमण करके प्रसन्न हुआ। फिर अपने वक्तव्य की व्याख्या करता हुआ बोला—"शहर की हर बात पर ऊपरी सजावट, अब देखिए न—यही 'रच्छाबंधन'। देहात में 'सलोनी पुरनिमाँ' के दिन···।"

"सलोनी पुरनिमाँ?"—मैंने अस्फुट शब्दों में जिज्ञासा प्रकट की। छोटेलाल ने मुझे महामूरख समझकर मुझ पर तरस खाने की मुद्रा बनायी—"सलोनी पुरनिमाँ नहीं समझते? आज ही है सलोनी पुरनिमाँ!"

मैंने फिर अपनी ग़लती के लिए छोटेलालजी से क्षमायाचना की—"ओ! श्रावणी···यानी···सावनी···हाँ, सावनी पूर्णिमा की रात तो सलोनी होगी ही।"

मुझे छोटेलाल ने अनजाने ही एक सुन्दर पंक्ति दे दी—सावनी सलोनी पूर्णिमा की रात। मुँह से निकल पड़ा, "वाह भाई!"

छोटेलाल ने अपने अधूरे वक्तव्य का सूत्र पुन: पकड़ा—"सो सलोनी पुरनिमाँ के दिन देहात में 'बाभन सब' हाथ में रंग-बिरंगी राखी की लच्छियाँ लेकर घर-घर घूम-घूमकर जजमानों को राखी बाँधते हैं—'जैनबन्धूबलि-राजा' मन्तर पढ़कर। मगर, शहर में राखी—'छौंड़ी सब' बाँधती है। अपने भाइयों को नहीं साहेब—मुँहबोले भाइयों को···!"

मैंने फिर अपनी अज्ञता प्रकट की—"मुँहबोले भाई?"

छोटेलाल ने इस बार मुझको करुणा की दृष्टि से घूरते हुए मुझसे पूछा—"भाई साहब! आप किस 'डिस्टिक' के रहनेवाले हैं जो मुँहबोला भाई का मतलब भी नहीं समझते?"

समझाने की आवश्यकता नहीं हुई: मैं स्वयं ही, तत्काल समझ गया। छोटेलाल ने पानवाले को पान में भरपूर मीठा मसाला डालने की ताकीद करने के बाद फिर शुरू किया—"भैया की भी दो मुँहबोली बहन सब आयी हैं—राखी बाँधने···।"

पानवाले क्रिस्ना ने टोका—"तो, आपके भैया की मुंहबोली बहन आपकी भी मुँहबोली बहन ही लगेगी···।"

छोटेलाल का चेहरा तमतमा उठा फिर—"यार क्रिस्ना ! तुम भी एकदम बेबात की बात···? भैया की मुँहबोली बहनों से मेरा क्या रिश्ता ? न तीन में, न तेरह में। तिस पर शहर की 'लपस्टिक लड़कियाँ···' जी, भाई साहेब, आपका चेहरा देखकर मैं बूझ गया कि आप फिर मतलब पूछना चाहते हैं···लपस्टिक लड़की का मतलब आपको फिर कभी समझा देंगे।··· यार क्रिस्ना—लपेट ना, देखते नहीं कि एक ही घण्टे में चार बार चाह-बिस्कुट और टौफी-लेमनचूस लेने के लिए इस चौबटिया पर आ चुका हूँ। ···अब यही देखिये न—यह लेमनचूस। देहात में यह बच्चों को फुसलाने वाली मिठाई है और यहाँ? यहाँ यह लड़कियों की—खासकर स्कूल-कौलेज की लड़कियों की···। कहते हो जल्दी क्या है? अभी दोनों को पहुँचाने के लिए जाना होगा। एक रहती है ईरघाट तो दूसरी मीरघाट। भौजी सुबह को ही अपने मुँहबोले भाइयों को राखी बांधने गयी है सो अभी तक लौटी नहीं। अगर, कहीं 'बरखा-बुन्नी' के मारे अटक गयी तो उनको भी ढूंढ़कर लाने के लिए इस छोटेलाल को ही जाना होगा।···और शहर में लड़कियों को पहुँचाने के लिए कहीं जाना कितना मुश्किल का काम है—यह···अरे, भैया—पीछे-पीछे साईकिल पर रिक्शा के साथ जाना खेल नहीं! एक दिन किसी लड़की को कहीं पहुँचाकर देखो न·· यहाँ के सभी छुरेबाज छोकरों को पहचान गया हूँ···लेकिन, जो कहो—रास्ता चलते वे जब लड़कियों पर ऐसे-ऐसे 'शबदभेदी बान' छोड़ते हैं कि कभी-कभी तो हमको भी हँसी आ जाती है।"

'बरखा-बुन्नी' शब्द को सुनकर मन हर्षित हुआ। शायद, आकाश में मँडरानेवाले काले-काले बादल भी प्रसन्न हुए—नन्ही-नन्ही बूंदें पड़ने लगीं। हम सभी चायवाले के छज्जे के नीचे—बेंचों पर जा बैठे। छोटेलाल ने आर्डर दिया—"तो, बनाओ यार, एक इसपिसिल चाह···।"

छोटेलाल ने, शहर के दूध और दूधवालों से लेकर गायों तक की निन्दा कर लेने के बाद अपने गाँव के दूध पर पड़नेवाली मलाई की तुलना 'भागलपुरी रेशम की रजाई' से की। तब, चायवाले से नहीं रहा गया, शायद। वह कुढ़कर बोला—"तो वैसी मोटी मलाई छोड़कर यहाँ शहर का घासी-घी खाने क्यों आये? देहात में ही रहते!"

लगा, छोटेलाल के पास चायवाले का उधार-बाकी कुछ ज्यादा ही था, पानवाले से। लेकिन, छोटेलाल तनिक भी छोटा नहीं हुआ। तमककर बोला—"आया हूँ क्या अपने मन से? ···अपने मन से तीन साल पहले एक बार गाँव से भागकर आया था तो तीन दिन भी नहीं रहने दिया था—भैया-भौजी ने। अब जब छोटेलाल की जरूरत हुई है, तो पाँच दिन तक खुशामद करके गाँव से बुला लाये हैं···।"

इस सिलसिले में छोटेलाल ने विस्तारपूर्वक अपने प्रोफेसर भैया के शहर की एक 'लपस्टिक लड़की' से 'लटपटा' जाने से लेकर रजिस्टरी-शादी तक के किस्से सुना दिये—उदारतापूर्वक। अन्त में, 'क्लाइमेक्स' पर आकर गर्व से बोला—"और, जब से यह बन्दा यानी छोटेलाल आया है, तब से 'दोनों प्राणी' सुख-चैन से सोते हैं। भैया की गैरहाज़िरी में अब कोई 'मस्तान' हमारी गलीवाली खिड़की के आस-पास कोई 'दिलफेंक फ़िल्मी गाना' गाकर देख ले, ज़रा! ···पहले तो यहाँ के इन 'सुथनासाह बादसाहों' ने मुझे देहाती-भुच्चा समझकर सिगरेट के धुएँ से उड़ा ही देने की कोशिश की। लेकिन जब छोटेलाल ने एक फुटफुटीबाज का 'गट्टा' पकड़ा कसके तो, पहले तो सालों ने ठीक सिनेमा के 'फैट' के अन्दाज़ में बांके तिरछे कायदे दिखाये—बाद में जब छोटेलाल का पहला 'झापड़' पड़ा कि बाकी साले ऐसे भागे··· तो, कहते हो कि क्यों आये! नहीं तो, आज के दिन से ही, माने सलोनी पुरनिमाँ के दिन से ही, 'क्रिस्नाकुम्मर' मेले में होनेवाले 'डरामा' का 'रिहलसल' शुरू हो जाता है। ओह! इस बार, अभी क्या जो होता होगा वहाँ···?"

छोटेलाल को गाँव की याद में इस तरह खोते हुए देखकर मैंने उसे जगाया—"आप ड्रामा में क्या करते थे?"

मेरा सवाल पूरा भी नहीं हो पाया, इसके पहले ही छोटेलाल ने जवाब दिया—"क्या नहीं करता था? पर्दा-पोशाक जमा करने से लेकर 'रिहलसल' के लिए दरी-जाजिम-पचलैट-चाह-हलवा-भांगबूटी का इन्तजाम···और, डरामा हो चाहे कुश्ती, चाहे घुड़दौड़—बिना छोटेलाल के हो तो जाये कोई काम? ···यह मत समझिए कि देहात में एकदम देहाती डरामा करता होगा। जी नहीं, एकदम नहीं। स्टेज पर बजते 'फौकसिंग' से खेला होता था—'बगदाद का सौदागर' तो, 'सुलताना डाकू' तो, 'भगतसिंह'···और, खेला ऐसा कि गुलाबबाग मेला में आनेवाली 'दि ग्रेट ठेठरिकल कम्पनी औफ इण्डिया' भी मात! समझे?"

पहली मुलाक़ात के बाद से ही हम मित्र हो गये। उससे बातें करके सदा मुझे कुछ नये शब्दों और मुहावरों की प्राप्ति हो जाती है। कभी-कभी एक ही साथ कई कहानियाँ—'सच्ची कहानी', 'बनती हुई कहानी', 'बिगड़ती हुई कहानी', 'धारावाहिक कहानी'!! छोटेलाल समझ गया है कि उसके 'देहाती माल' से लेकर 'शहरी मसाला' का असल गाहक मैं ही हूँ। कभी

चाय, कभी बिस्कुट अथवा उबला हुआ अण्डा पाकर वह 'चटपटी प्रेम-कहानियाँ' सुनाने लगता है—"अरे भैया ! देहात में जिसको 'लाट-साट' या 'लटपटा जाना' कहते हैं, उसको ही शहर में 'लभ' चाहे 'प्रेम' कहते हैं—हमारी 'दइया' है न···उसके जिम्मे एक-से-एक 'मोहब्बत मार्का' किस्सा है।···इस नगर के पाँच रोड के पचास 'फेमिली' के नौकर और दाई और जमादार-जमादारनी से मेरा हेलमेल है। सो, रोज़ तीन-चार, प्रेम-पिहानी···वह छोटकी गाड़ी में 'चंडोल-सफाचट' बूढ़ा अभी गया न—वह अपनी जमादारनी से 'इशकबाज़ी'···अरे बूढ़ा है ? दिल भी कहीं बूढ़ा होता है···उस लौंडे को देखते हैं न···वही जो 'लेडिज़फिगर' खरीद रहा है—अपनी अधेड़ मालकिन का 'खानगी' नौकर है—मौज कर रहा है—मैं उसको क्या कहता हूँ जानते हैं ? बैसाखी खीरे का बतिया !···तीन नम्बर के लाल बँगले के छत पर हर रात को 'जिन्दा-सिनेमा' होता है।···और, 'लभ' वाली शादी कहिए चाहे प्रेमविवाह—मगर, है यह बालू की दीवार···अब मेरी भाभी को ही देखिये न—भैया के जितने दोस्त आते हैं, सभी 'लभ' की नज़र से देखते हैं। माने, एक बार एक आदमी से लभ करनेवाली लड़की हमेशा किसी-न-किसी आदमी से लभ करती ही रहती है—लोग यही समझते हैं। मेरा भी यही अनुमान है। फिर किसी दिन सुनायेंगे आपको···।"

कभी-कभी वह बहुत ही उदास दिखता तो मैं टोक देता—"आज कुछ उदास नज़र आ रहे हो, छोटे ? क्यों, क्या बात है ?"

उस दिन क्रिस्ना के कोंचने और चिढ़ाने पर भी वह कोई जवाब नहीं देता। किन्तु, मेरे सवाल के जवाब में प्रायः वह कहा करता—"जी करता है, उड़कर चला जाऊँ।"

"कहाँ ?"—मैं अचरज से पूछता।

"और कहाँ ? गाँव।"

सात-आठ महीने की बैठकों में मैं उसके भैया-भौजी, गाँव-घर, टोला-समाज के लोगों के अलावा उसके गाँव के आस-पास के खेत-मैदान, नदी-पोखरे, हाट-घाट-बाट से अच्छी तरह परिचित हो चुका था। पूछता—"क्यों ? रानीगंज हाट की जलेबी खाने का जी करता है या रजौली पोखरे की मछली ?"

उस दिन, ऐसा लगा कि वह मेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था। उदासी का कारण पूछते ही वह मुझे चाय की दुकान पर ले गया, हाथ पकड़कर—"अब आप ही बतलाइये जी। मैं क्या करूँ ? भैया-भौजी की लड़ाई अब आखिरी सीमा पर पहुँच गयी है। अब तो कभी-कभी मार-पीट, 'पजड़ा-पजड़ोवल' भी हो जाती है। जब दोनों झगड़ने लगते हैं, तो मैं रेडियो को और तेज कर

देता हूँ। पानी के दोनों नलों को 'फुलस्पीड' में खोल देता हूँ, ताकि बाहर के लोगों तक—पास-पड़ोस में उनके झगड़े की आवाज़ नहीं पहुँच सके। मगर अब लगता है, बात फैल जायेगी। अब मैं क्या करूँ ? किसका साथ दूँ ?···भौजी को सन्देह समा गया है कि भैया किसी मुँहबोली बहन के साथ 'लभ' में लटपटा गये हैं और भैया कहते हैं कि शहर की लड़की से शादी करके उनकी शान्ति समाप्त हो गयी। अब मैं अगर भैया का 'पच्छ' लेता हूँ तो भौजी और भौजी के तरफ से बोलूँ तो भैया—दोनों ओर से जाता हूँ—दोनों मुझसे नाराज़···अजीब साँसत में मेरी जान फँसी है। बताइए न, क्या करूँ ?"

आज छोटे बहुत प्रसन्न है। उसने भैया के गृहकलह को शान्त कर दिया है। "मैंने भैया से एकान्त में कहा—'भाभी की गैरहाज़िरी में अब अगर किसी मुँहबोली लड़की को घर पर लाइयेगा तो मैं भाभी को बता दूँगा।' और, भाभी को धमकी दी—'मैके जाने का बहाना बनाकर आप इस मुहल्ले की मौसी और उस मुहल्ले की मामी के घर जाना बन्द करिये, भाभी ! नहीं तो बिलट रिक्शावाला को गवाही में लाकर खड़ा कर दूँगा कि आप कहाँ-कहाँ जाती हैं और किस-किससे मिलती हैं।'"

अन्त में, सबसे बड़ी खुशखबरी देते हुए वह तनिक लजाया। फिर मुस्कराया—"अब आप ही बतलाइये न, मैं क्या करूँ ? भाभी के एक मौसी है। उसकी छै लड़कियाँ। लेकिन चौथी लड़की ठीक भाभी की तरह है, देखने में। भाभी उसको खूब मानती हैं। कभी-कभी वह आकर दो-तीन दिन रह भी जाती है। सो···अब क्या बतावें। अपने जानते तो मैं बड़ा होशियारी से रहता आया हूँ इस शहर में, मगर, वह लड़की पता नहीं कैसे और कब से मुझसे 'लभ' करने लगी कि मुझसे पहले भाभी को पता चल गया। अब भाभी कहती है कि छोटे···? अब क्या बताऊँ कि भाभी क्या कहती है ? एकदम, सीधे शादी कर लेने को कहती है। अब आप ही बतलाइये न—मैं क्या करूँ ? अगर 'लभ' नहीं करने लगी होती तो मैं साफ-साफ कह देता कि शहर की लपस्टिक लड़कियाँ मुझे पसन्द नहीं। लेकिन, अब ऐसा कहने से उसका दिल टूट जायेगा न। है कि नहीं ?"

लाल पान की बेगम

"क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?"

बिरजू की माँ शकरकन्द उबालकर बैठी मन-ही-मन कुढ़ रही थी अपने आँगन में। सात साल का लड़का बिरजू शकरकन्द के बदले तमाचे खाकर आँगन में लोट-पोटकर सारी देह में मिट्टी मल रहा था। चम्पिया के सिर भी चुड़ैल मँडरा रही है···आधे-आँगन धूप रहते जो गयी है सहुआइन की दुकान छोवा-गुड़ लाने, सो अभी तक नहीं लौटी; दीया-बाती की बेला हो गयी। आये आज लौटके जरा! बागड़ बकरे की देह में कुकुरमाछी लगी थी, इसलिए बेचारा बागड़ रह-रहकर कूद-फाँद कर रहा था। बिरजू की माँ बागड़ पर मन का गुस्सा उतारने का बहाना ढूँढ़कर निकाल चुकी थी।··· पिछवाड़े की मिर्च की फूली गाछ! बागड़ के सिवा और किसने कलेवा किया होगा! बागड़ को मारने के लिए वह मिट्टी का छोटा ढेला उठा चुकी थी, कि पड़ोसिन मखनी फुआ की पुकार सुनायी पड़ी—"क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?"

"बिरजू की माँ के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न; फुआ!"

गरम गुस्से में बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धँस गयी और बिरजू की माँ ने हाथ के ढेले को पास ही फेंक दिया—"बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परेशान कर रही है। आ-हा, आय···आय! हर्र-र-र-र! आय-आय!"

बिरजू ने लेटे-ही-लेटे बागड़ को एक डण्डा लगा दिया। बिरजू की माँ की इच्छा हुई कि जाकर उसी डण्डे से बिरजू का भूत भगा दे, किन्तु नीम के पास खड़ी पनभरनियों की खिलखिलाहट सुनकर रुक गयी। बोली, "ठहर, तेरे बप्पा ने बड़ा हथछुट्टा बना दिया है तुझे! बड़ा हाथ चलता है लोगों पर। ठहर!"

मखनी फुआ नीम के पास झुकी कमर से घड़ा उतारकर पानी भरकर लौटती पनभरनियों में बिरजू की माँ की बहकी हुई बात का इन्साफ करा रही थी—"जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव ही नहीं पड़ते! निसाफ करो! खुद अपने मुँह से आठ दिन पहले से ही गाँव की अली-गली में बोलती फिरी है, 'हाँ, इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बिठाकर बलरामपुर का नाच दिखा लाऊँगा। बैल अब अपने घर है, तो हजार गाड़ी मँगनी मिल जायेंगी।' सो मैंने अभी टोक दिया, नाच देखनेवाली सब तो औन-पौन कर

तैयार हो रही हैं, रसोई-पानी कर रहे हैं। मेरे मुंह में आग लगे, क्यों मैं टोकने गयी! सुनती हो, क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने ?"

मखनी फुआ ने अपने पोपले मुंह के होंठों को एक ओर मोड़कर ऐंठती हुई बोली निकाली—"अर्-रें-हाँ-हाँ! बि-र-र-ज्जू की मैं···या के आगे नाथ औ-रें पीछे पगहिया ना हो, तब्ब ना-आ-आ!"

जंगी की पुतोहू बिरजू की माँ से नहीं डरती। वह जरा गला खोलकर ही कहती है, "फुआ-आ! सरबे सित्तलमिण्टी (सर्वे सेट्लमेण्ट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारीवाली साड़ी पहनके यदि तू भी भटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दु-तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता! फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदता! फिर आगे नाथ और पीछे सैकड़ों पगहिया झूलती!"

जंगी की पुतोहू मुँहजोर है। रेलवे स्टेशन के पास की लड़की है। तीन ही महीने हुए, गौने की नयी बहू होकर आयी है और सारे कुर्माटोली की सभी झगड़ालू सासों से एकाध मोरचा ले चुकी है। उसका ससुर जंगी दागी चोर है, सी-किलासी है। उसका खसम रंगी कुर्माटोली का नामी लठैत। इसीलिए हमेशा सींग खुजाती फिरती जंगी की पुतोहू!

बिरजू की माँ के आँगन में जंगी की पुतोहू की गला-खोल बोली गुलेल की गोलियों की तरह दनदनाती हुई आयी थी। बिरजू की माँ ने एक तीखा जवाब खोजकर निकाला, लेकिन मन मसोसकर रह गयी।···गोबर की ढेरी में कौन ढेला फेंके!

जीभ के झाल को गले में उतारकर बिरजू की माँ ने अपनी बेटी चम्पिया को आवाज दी—"अरी चम्पिया-या-या, आज लौटे तो तेरी मूड़ी मरोड़कर चूल्हे में झोंकती हूँ! दिन-दिन बेचाल होती जाती है!···गाँव में तो अब ठेठर-बैसकोप का गीत गानेवाली पतुरिया-पुतोहू सब आने लगी हैं। कहीं बैठके 'बाजे न मुरलिया' सीख रही होगी ह-र-जा-ई-ई! अरी चम्पि-या-या-या!"

जंगी की पुतोहू ने बिरजू की माँ की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को सँभाला और मटककर बोली, "चल दिदिया, चल! इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती है! नहीं जानती, दोपहर-दिन और चौपहर-रात बिजली की बत्ती भक्-भक् कर जलती है!"

भक्-भक् बिजली-बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यों सभी खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। फुआ की टूटी हुई दन्त-पंक्तियों के बीच से एक मीठी गाली निकली—"शैतान की नानी!"

बिरजू की माँ की आँखों पर मानो किसी ने तेज टार्च की रोशनी डाल-

कर चौंधिया दिया।···भक्-भक् बिजली-बत्ती ! तीन साल पहले सर्वे कैम्प के बाद गाँव की जलनडाही औरतों ने एक कहानी गढ़के फैलायी थी, चम्पिया की माँ के आँगन में रात-भर बिजली-बत्ती भुकभुकाती थी ! चम्पिया की माँ के आँगन में नाकवाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह ! ···जलो, जलो ! और जलो ! चम्पिया की माँ के आँगन में चाँदी-जैसे पाट सूखते देखकर जलनेवाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों को देखकर बैंगन का भुर्ता हो जायेंगी।

मिट्टी के बरतन से टपकते हुए छोवा-गुड़ को उँगलियों से चाटती हुई चम्पिया आयी और माँ के तमाचे खाकर चीख पड़ी—"मुझे क्यों मारती है-ए-ए-ए ! सहुआइन जल्दी से सौदा नहीं देती है-एँ-एँ-एँ-एँ !"

"सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी ! एक सहुआइन की ही दुकान पर मोती झरते हैं, जो जड़ गाड़कर बैठी हुई थी ! बोल, गले पर लात देकर कल्ला तोड़ दूँगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना ! चाल सीखने जाती है टीशन की छोकरियों से !"

बिरजू की माँ ने चुप होकर अपनी आवाज़ अन्दाज़ी कि उसकी बात जंगी के झोंपड़े तक साफ़-साफ़ पहुँच गयी होगी।

बिरजू बीती हुई बातों को भूलकर उठ खड़ा हुआ था और धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचायी निगाह से देखने लगा था।···दीदी के साथ वह भी दूकान जाता तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती, ज़रूर ! वह शकरकन्द के लोभ में रहा और माँगने पर माँ ने शकरकन्द के बदले···

"ए मैया, एक अँगुली गुड़ दे दे !" बिरजू ने तलहथी फैलायी—"दे ना मैया, एक-रत्ती-भर !"

"एक रत्ती क्यों, उठाके बरतन को फेंक आती हूँ पिछवाड़े में; जाके चाटना ! नहीं बनेगी मीठी रोटी !···मीठी रोटी खाने का मुँह होता है !" बिरजू की माँ ने उबले शकरकन्द का सूप रोनी हुई चम्पिया के सामने रखते हुए कहा, "बैठके छिलके उतार, नहीं तो अभी···!"

दस साल की चम्पिया जानती है, शकरकन्द छीलते समय कम-से-कम बारह बार माँ उसे बाल पकड़कर झकझोरेगी, छोटी-छोटी खोट निकालकर गालियाँ देगी—'पाँव फैलाके क्यों बैठी है उस तरह, बेलज्जी !' चम्पिया माँ के गुस्से को जानती है।

बिरजू ने इस मौके पर थोड़ी-सी खुशामद करके देखा—"मैया, मैं भी बैठकर शकरकन्द छीलूँ ?"

"नहीं !" माँ ने झिड़की दी, "एक शकरकन्द छीलेगा और तीन पेट में ! जाके सिद्धू की बहू से कहो, एक घण्टे के लिए कड़ाही माँगकर ले गयी

तो फिर लौटाने का नाम नहीं। जा जल्दी !"

मुँह लटकाकर आँगन से निकलते-निकलते बिरजू ने शकरकन्द और गुड़ पर निगाह दौड़ायी। चम्पिया ने अपने झबरे केश की ओट से माँ की ओर देखा और नजर बचाकर चुपके से बिरजू की ओर एक शकरकन्द फेंक दिया।···बिरजू भागा।

"सूरज भगवान डूब गये। दीया-बत्ती की बेला हो गयी। अभी तक गाड़ी···"

चम्पिया बीच में ही बोल उठी—"कोयरीटोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी मैया ! बप्पा बोले, माँ से कहना सब ठीक-ठाक करके तैयार रहें। मलदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।"

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा, छाते की कमानी उतर गयी घोड़े से अचानक। कोयरीटोले में किसी ने गाड़ी मँगनी नहीं दी ! तब मिल चुकी गाड़ी ! जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नहीं तो मलदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी का क्या भरोसा ! न तीन में, न तेरह में ! क्या होगा शकरकन्द छीलकर ! रख दे उठा के !···यह मर्द नाच दिखायेगा ! बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच दिखाने ले जायेगा ! चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी-भर नाच···पैदल जानेवाली सब पहुँचकर पुरानी हो चुकी होंगी।

बिरजू छोटी कड़ाही सिर पर औंधाकर वापस आया—"देख दिदिया, मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होता।"

चम्पिया चुपचाप बैठी रही, कुछ बोली नहीं, ज़रा-सी मुस्करायी भी नहीं। बिरजू ने समझ लिया, मैया का गुस्सा अभी उतरा नहीं है पूरे तौर से।

मड़ैया के अन्दर से बागड़ को बाहर भगाती हुई बिरजू की माँ बड़बड़ायी—"कल ही पँचकौड़ी कसाई के हवाले करती हूँ राकस तुझे ! हर चीज में मुँह लगायेगा। चम्पिया, बाँध दे बागड़ को। खोल दे गले की घण्टी ! हमेशा टुनुर-टुनुर ! मुझे ज़रा नहीं सुहाता है !"

'टुनुर-टुनुर' सुनते ही बिरजू को सड़क से जाती हुई बैलगाड़ियों की याद हो आयी—"अभी बबुआनटोले की गाड़ियाँ नाच देखने जा रही थीं··· झुनुर-झुनुर बैलों की झुनकी, तुमने सु···"

"बेसी बक-बक मत करो !" बागड़ के गले से झुनकी खोलती बोली चम्पिया।

"चम्पिया, डाल दे चूल्हे में पानी ! बप्पा आवें तो कहना कि अपने उड़नजहाज़ पर चढ़कर नाच देख आयें ! मुझे नाच देखने का सौख नहीं !··· मुझे जगइयो मत कोई ! मेरा माथा दुख रहा है।"

मढ़ैया के ओसारे पर बिरजू ने फिसफिसाके पूछा, "क्यों दिदिया, नाच में उड़नजहाज भी उड़ेगा ?"

चटाई पर कथरी ओढ़कर बैठती हुई चम्पिया ने बिरजू को चुपचाप अपने पास बैठने का इशारा किया, मुफ़्त में मार खायेगा बेचारा !

बिरजू ने बहन की कथरी में हिस्सा बाँटते हुए चुक्की-मुक्की लगायी। जाड़े के समय इस तरह घुटने पर ठुड्डी रखकर चुक्की-मुक्की लगाना सीख चुका है वह। उसने चम्पिया के कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "हम लोग नाच देखने नहीं जायेंगे ?···गाँव में एक पंछी भी नहीं है। सब चले गये।"

चम्पिया को अब तिल-भर भी भरोसा नहीं। संझा तारा डूब रहा है। बप्पा अभी तक गाड़ी लेकर नहीं लौटे।···एक महीना पहले से ही मैया कहती थी, बलरामपुर के नाच के दिन मीठी रोटी बनेगी; चम्पिया छींट की साड़ी पहनेगी; बिरजू पैण्ट पहनेगा; बैलगाड़ी पर चढ़कर···

चम्पिया की भीगी पलकों पर एक बूँद आँसू आ गया।

बिरजू का भी दिल भर आया। उसने मन-ही-मन इमली पर रहनेवाले जिनबाबा को एक बैंगन कबूला, गाछ का सबसे पहला बैंगन, उसने खुद जिस पौधे को रोपा है !···जल्दी से गाड़ी लेकर बप्पा को भेज दो, जिनबाबा !

मढ़ैया के अन्दर बिरजू की माँ चटाई पर पड़ी करवटें ले रही थी। उँह, पहले से किसी बात का मनसूबा नहीं बाँधना चाहिए किसी को ! भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया। उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो भोला बाबा ! अपने जानते उसने किसी देवता-पित्तर की मान-मनौती बाकी नहीं रखी। सर्वे के समय जमीन के लिए जितनी मनौतियाँ की थीं···ठीक ही तो ! महाबीरजी का रोट तो बाकी ही है। हाय रे दैव !···भूल-चूक माफ़ करो महाबीर बाबा ! मनौती दूनी करके चढ़ायेगी बिरजू की माँ !···

बिरजू की माँ के मन में रह-रहकर जंगी की पुतोहू की बातें चुभती हैं, भक्-भक् बिजली-बत्ती !···चोरी-चमारी करनेवाले की बेटी-पुतोहू जलेगी नहीं ! पाँच बीघा जमीन क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गाँव की भाईखौकियों की आँखों में किरकिरी पड़ गयी है। खेत में पाट लगा देखकर गाँव के लोगों की छाती फटने लगी; धरती फोड़कर पाट लगा है; बैसाखी बादलों की तरह उमड़ते आ रहे हैं पाट के पौधे ! तो अलान, तो फलान ! इतनी आँखों की धार भला फसल सहे ! जहाँ पन्द्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ़ दस मन पाट काँटा पर तौल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहाँ।···

इसमें जलने की क्या बात है भला !···बिरजू के बप्पा ने तो पहले ही कुर्मा‌टोली के एक-एक आदमी को समझाके कहा, 'जिन्दगी-भर मजदूरी करते रह जाओगे। सर्वे का समय आ रहा है, लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीघे जमीन हासिल कर सकते हो।' सो गाँव की किसी पुतखौकी का भतार सर्वे के समय बाबूसाहेब के खिलाफ खाँसा भी नहीं।···बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा है ! बाबूसाहेब गुस्से से सरकस नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रह गये। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया।···आखिर बाबूसाहेब ने अपने सबसे छोटे लड़के को भेजा। बिरजू की माँ को 'मौसी' कहके पुकारा—'यह जमीन बाबूजी ने मेरे नाम से खरीदी थी। मेरी पढ़ाई-लिखायी उसी जमीन की उपज से चलती है।'···और भी कितनी बातें। खूब मोहना जानता है उत्ता ज़रा-सा लड़का। ज़मींदार का बेटा है कि···

"चम्पिया, बिरजू सो गया क्या ? यहाँ आ जा बिरजू, अन्दर। तू भी आ जा, चम्पिया !···भला आदमी आये तो एक बार आज !"

बिरजू के साथ चम्पिया अन्दर चली गयी।

"ढिबरी बुझा दे।···बप्पा बुलायें तो जवाब मत देना। खपच्ची गिरा दे।"

भला आदमी रे, भला आदमी ! मुँह देखो ज़रा इस मर्द का !···बिरजू की माँ दिन-रात मंझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन ! रोज़ आकर माथा पकड़के बैठ जायें, 'मुझे ज़मीन नहीं लेनी है बिरजू की माँ, मजूरी ही अच्छी।'···जवाब देती थी बिरजू की माँ खूब सोच-समझके, 'छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता है तो क्या होगा ? जोरू-ज़मीन जोर के, नहीं तो किसी और के !···'

बिरजू के बाप पर बहुत तेज़ी से गुस्सा चढ़ता है। चढ़ता ही जाता है। ···बिरजू की माँ का भाग ही खराब है, जो ऐसा गोबरगनेश घरवाला उसे मिला। कौन-सा सौख-मौज दिया है उसके मर्द ने ! कोल्हू के बैल की तरह खटकर सारी उम्र काट दी इसके यहाँ, कभी एक पैसे की जलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने !···पाट का दाम भगत के यहाँ से लेकर बाहर-ही-बाहर बैल-हट्टा चले गये। बिरजू की माँ को एक बार नमरी लोट देखने भी नहीं दिया आँख से।···बैल खरीद लाये। उसी दिन से गाँव में ढिंढोरा पीटने लगे, बिरजू की माँ इस बार बैलगाड़ी पर चढ़कर जायेगी नाच देखने !···दूसरे की गाड़ी के भरोसे नाच दिखायेगा !···

अन्त में उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नहीं ! उसकी जीभ में आग लगे ! बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच देखने की

लालसा किस कुसमय में उसके मुंह से निकली थी, भगवान जानें ! फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी-न-किसी बहाने उसने अठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने की चर्चा छेड़ी है।···लो, खूब देखो नाच ! वाह रे नाच ! कथरी के नीचे दुशाले का सपना !···कल भोरे पानी भरने के लिए जब जायेगी, पतलो जीभवाली पतुरिया सब हँसती आयेंगी, हँसती जायेंगी।···सभी जलते हैं उससे, हाँ भगवान, दाढ़ीजार भी ! दो बच्चों की माँ होकर भी वह जस-की-तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी ज़मीन है। है किसी के पास एक धूर ज़मीन भी अपनी इस गाँव में ! जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिखदीठ से बचे, तब तो !

बाहर बैलों की घण्टियाँ सुनायी पड़ीं। तीनों सतर्क हो गये। उत्कर्ण होकर सुनते रहे।

"अपने ही बैलों की घण्टी है, क्यों री चम्पिया ?"

चम्पिया और बिरजू ने प्रायः एक ही साथ कहा, "हूँ-ऊँ-ऊँ !"

"चुप !" बिरजू की माँ ने फिसफिसाकर कहा, "शायद गाड़ी भी है, घड़घड़ाती है न ?"

"हूँ-ऊँ-ऊँ !" दोनों ने फिर हुंकारी भरी।

"चुप ! गाड़ी नहीं है। तू चुपके से टट्टी में छेद करके देख तो आ चम्पी ! भागके आ, चुपके-चुपके।"

चम्पिया बिल्ली की तरह हौले-हौले पाँव से टट्टी के छेद से झाँक आयी—"हाँ मैया, गाड़ी भी है !"

बिरजू हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसकी माँ ने उसके हाथ पकड़कर सुला दिया—"बोले मत !"

चम्पिया भी गुदड़ी के नीचे घुस गयी।

बाहर बैलगाड़ी खोलने की आवाज़ हुई। बिरजू के बाप ने बैलों को जोर से डाँटा—"हाँ-हाँ ! आ गये घर ! घर आने के लिए छाती फटी जाती थी !"

बिरजू की माँ ताड़ गयी, जरूर मलदहियाटोली में गाँजे की चिलम चढ़ रही थी, आवाज़ तो बड़ी खनखनाती हुई निकल रही है।

"चम्पिया-ह !" बाहर से ही पुकारकर कहा उसके बाप ने, "बैलों को घास दे दे, चम्पिया-ह !"

अन्दर से कोई जवाब नहीं आया। चम्पिया के बाप ने आँगन में आकर देखा तो न रोशनी, न चिराग, न चूल्हे में आग।···बात क्या है ! नाच देखने, उतावली होकर, पैदल ही चली गयी क्या···!

बिरजू के गले में खसखसाहट हुई और उसने रोकने की पूरी कोशिश भी की, लेकिन खाँसी जब शुरू हुई तो पूरे पाँच मिनट तक वह खाँसता रहा।

"बिरजू ! बेटा बिरजमोहन !" बिरजू के बाप ने पुचकारकर बुलाया, "मैया गुस्से के मारे सो गयी क्या ?···अरे अभी तो लोग जा ही रहे हैं।"

बिरजू की माँ के मन में आया कि कसकर जवाब दे, नहीं देखना है नाच ! लौटा दो गाड़ी !

"चम्पिया-ह ! उठती क्यों नहीं ? ले, धान की पँचसीस रख दे।" धान की बालियों का छोटा झब्बा झोंपड़े के ओसारे पर रखकर उसने कहा, "दीया बालो !"

बिरजू की माँ उठकर ओसारे पर आयी—"डेढ़ पहर रात को गाड़ी लाने की क्या जरूरत थी ? नाच तो अब खत्म हो रहा होगा।"

ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मैल दूर हो गया।···धानी रंग उसकी आँखों से उतरकर रोम-रोम में घुल गया।

"नाच अभी शुरू भी नहीं हुआ होगा। अभी-अभी बलरामपुर के बाबू की सम्पनी गाड़ी मोहनपुर होटिल-बँगला से हाकिम साहब को लाने गयी है। इस साल आखिरी नाच है।···पँचसीस टट्टी में खोंस दे, अपने खेत का है।"

"अपने खेत का ?" हुलसती हुई बिरजू की माँ ने पूछा, "पक गये धान ?"

"नहीं, दस दिन में अगहन चढ़ते-चढ़ते लाल होकर झुक जायेंगी सारे खेत की बालियाँ।···मलदहियाटोली पर जा रहा था, अपने खेत में धान देखकर आँखें जुड़ा गयीं। सच कहता हूँ, पँचसीस तोड़ते समय उँगलियाँ काँप रही थीं मेरी !"

बिरजू ने धान की एक बाली से एक धान लेकर मुंह में डाल लिया और उसकी माँ ने एक हल्की डाँट दी—"कैसा लुक्कड़ है तू रे !···इन दुश्मनों के मारे कोई नेम-धरम जो बचे !"

"क्या हुआ, डाँटती क्यों है ?"

"नवान्न के पहले ही नया धान जुठा दिया, देखते नहीं ?"

"अरे, इन लोगों का सब-कुछ माफ है। चिरई-चुरमुन हैं ये लोग ! दोनों के मुँह में नवान्न के पहले नया अन्न न पड़े !"

इसके बाद चम्पिया ने भी धान की बाली से दो धान लेकर दाँतों-तले दबाया—"ओ मैया ! इतना मीठा चावल !"

"और गमकता भी है न दिदिया ?" बिरजू ने फिर मुँह में धान लिया।

"रोटी-पोटी तैयार कर चुकी क्या ?" बिरजू के बाप ने मुस्कराकर पूछा।

"नहीं !" मान-भरे सुर में बोली बिरजू की माँ, "जाने का ठीक-ठिकाना नहीं···और रोटी बनाती !"

"वाह ! खूब हो तुम लोग !···जिसके पास बैल है, उसे गाड़ी मँगनी नहीं मिलेगी भला ? गाड़ीवालों को भी बैल की कभी जरूरत होगी।··· पूछूँगा तब कोयरीटोलावालों से !···ले, जल्दी से रोटी बना ले।"

"देर नहीं होगी !"

"अरे, टोकरी-भर रोटी तो तू पलक मारते बना लेती है; पाँच रोटियाँ बनाने में कितनी देर लगेगी !"

अब बिरजू की माँ के होंठों पर मुस्कराहट खुलकर खिलने लगी। उसने नजर बचाकर देखा, बिरजू का बप्पा उसकी ओर एकटक निहार रहा है।···चम्पिया और बिरजू न होते तो मन की बात हँसकर खोलते देर न लगती। चम्पिया और बिरजू ने एक-दूसरे को देखा और खुशी से उनके चेहरे जगमगा उठे—"मैया बेकार गुस्सा हो रही थी न !"

"चम्पी ! ज़रा घैलसार में खड़ी होकर मखनी फुआ को आवाज़ दे तो !"

"ऐ फू आ-आ ! सुनती हो फूआ-आ ! मैया बुला रही है !"

फुआ ने कोई जवाब नहीं दिया, किन्तु उसकी बड़बड़ाहट स्पष्ट सुनायी पड़ी—"हाँ ! अब फुआ को क्यों गुहारती है ? सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ-पगहियावाली है।"

"अरी फुआ !" बिरजू की माँ ने हँसकर जवाब दिया, "उस समय बुरा मान गयी थी क्या ? नाथ-पगहियावाले को आकर देखो, दोपहर रात में गाड़ी लेकर आया है ! आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती।"

फुआ काँखती-खाँसती आयी—"इसी से घड़ी-पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जायेगी क्या ? कहती, तो मैं पहले से ही अपनी अँगीठी यहाँ सुलगा जाती।"

बिरजू की माँ ने फुआ को अँगीठी दिखला दी और कहा, "घर में अनाज-दाना वगैरह तो कुछ है नहीं। एक बागड़ है और कुछ बरतन-बासन, सो रात-भर के लिए यहाँ तम्बाकू रख जाती हूँ। अपना हुक्का ले आयी हो न फुआ ?"

फुआ को तम्बाकू मिल जाये, तो रात-भर क्या, पाँच रात बैठकर जाग

सकती है। फुआ ने अँधेरे में टटोलकर तम्बाकू का अन्दाज किया···ओ-हो ! हाथ खोलकर तम्बाकू रखा है बिरजू की माँ ने ! और एक वह है सहुआइन ! राम कहो ! उस रात को अफीम की गोली की तरह एक मटर-भर तम्बाकू रखकर चली गयी गुलाब-बाग मेले और कह गयी कि डिब्बी-भर तम्बाकू है।

बिरजू की माँ चूल्हा सुलगाने लगी। चम्पिया ने शकरकन्द को मसल-कर गोले बनाये और बिरजू सिर पर कड़ाही औंधाकर अपने बाप को दिखलाने लगा—"मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होगा !"

सभी ठठाकर हँस पड़े। बिरजू की माँ हँसकर बोली, "ताखे पर तीन-चार मोटे शकरकन्द हैं, दे दे बिरजू को चम्पिया, बेचारा शाम से ही···"

"बेचारा मत कहो मैया, खूब सचारा है !" अब चम्पिया चहकने लगी, "तुम क्या जानो, कथरी के नीचे मुँह क्यों चल रहा था बाबू साहब का !"

"ही-ही-ही !"

बिरजू के टूटे दूध के दाँतों की फाँक से बोली निकली, "बिलैक-मारटिन में पाँच शकरकन्द खा लिया ! हा-हा-हा !"

सभी फिर ठठाकर हँस पड़े। बिरजू की माँ ने फुआ का मन रखने के लिए पूछा, "एक कनवाँ गुड़ है। आधा दूँ फुआ ?"

फुआ ने गद्गद होकर कहा, "अरी शकरकन्द तो खुद मीठा होता है, उतना क्यों डालेगी ?"

जब तक दोनों बैल दाना-घास खाकर एक-दूसरे की देह को जीभ से चाटें, बिरजू की माँ तैयार हो गयी। चम्पिया ने छींट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पैण्ट पर पटसन की डोरी बँधवाने लगा।

बिरजू की माँ ने आँगन से निकल गाँव की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा की—"उँहुँ, इतनी देर तक भला पैदल जानेवाले रुके रहेंगे ?"

पूर्णिमा का चाँद सिर पर आ गया है।···बिरजू की माँ ने असली रूपा का मँगटिक्का पहना है आज, पहली बार। बिरजू के बप्पा को हो क्या गया है, गाड़ी जोतता क्यों नहीं, मुँह की ओर एकटक देख रहा है, मानो नाच की लाल पान की···

गाड़ी पर बैठते ही बिरजू की माँ की देह में एक अजीब गुदगुदी लगने लगी। उसने बाँस की बल्ली को पकड़कर कहा, "गाड़ी पर अभी बहुत जगह है।···जरा दाहिनी सड़क से गाड़ी हाँकना।"

बैल जब दौड़ने लगे और पहिया जब चूँ-चूँ करके घरघराने लगा तो

बिरजू से नहीं रहा गया— 'उड़नजहाज की तरह उड़ाओ बप्पा !"

गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची। बिरजू की माँ ने कहा, "ज़रा जंगी से पूछो न, उसकी पुतोहू नाच देखने चली गयी क्या ?"

गाड़ी के रुकते ही जंगी के झोंपड़े से आती हुई रोने की आवाज़ स्पष्ट हो गयी। बिरजू के बप्पा ने पूछा, "अरे जंगी भाई, काहे कन्ना-रोहट हो रहा है आँगन में ?"

जंगी घूर ताप रहा था, बोला, "क्या पूछते हो, रंगी बलरामपुर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जाये ! आसरा देखते-देखते उधर गाँव की सभी औरतें चली गयीं।"

"अरी टीशनवाली, तो रोती है काहे !" बिरजू की माँ ने पुकारकर कहा, "आ जा झट से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है ! बेचारी ! ···आ जा जल्दी !"

बगल के झोंपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा, "काकी, गाड़ी में जगह है ? मैं भी जाऊँगी।"

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गयी है। गिलट का झुनकी-कड़ा पहनकर झमकती आ रही है।

"आ जा ! जो बाकी रह गयी हैं, सब आ जायें जल्दी !"

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीवी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों गाड़ी के पास आयीं। बैल ने पिछला पैर फेंका। बिरजू के बाप ने एक भद्दी गाली दी—"साला ! लताड़ मारकर लंगड़ी बनायेगा पुतोहू को !"

सभी ठठाकर हँस पड़े। बिरजू के बाप ने घूंघट में झुकी दोनों पुतोहुओं को देखा। उसे अपने खेत की झुकी हुई बालियों की याद आ गयी।

जंगी की पुतोहू का गौना तीन ही मास पहले हुआ है। गौने की रंगीन साड़ी से कड़वे तेल और लठवा-सिन्दूर की गन्ध आ रही है। बिरजू की माँ को अपने गौने की याद आयी। उसने कपड़े की गठरी से तीन मीठी रोटियाँ निकालकर कहा, "खा ले एक-एक करके। सिमराहा के सरकारी कूप में पानी पी लेना।"

गाड़ी गाँव से बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चाँदनी, कातिक की !···खेतों से धान के झरते फूलों की गन्ध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी सुलगाकर बिरजू की माँ की ओर बढ़ायी। बिरजू की माँ को अचानक याद आयी चम्पिया, सुनरी, लरेना की बीवी और जंगी की पुतोहू, ये चारों ही तो गाँव में बैसकोप का गीत गाना जानती हैं।···खूब !

गाड़ी की लीक धनखेतों के बीच होकर गयी। चारों ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट-जैसी आवाज होती है।···बिरजू की माँ के माथे के मँगटिक्के पर चाँदनी छिटकती है।

"अच्छा, अब एक बैसकोप का गीत गा तो चम्पिया! ···डरती है काहे ? जहाँ भूल जाओगी, बगल में मासटरनी बैठी ही है !"

दोनों पुतोहुओं ने तो नहीं, किन्तु चम्पिया और सुनरी ने खँखारकर गला साफ़ किया।

बिरजू के बाप ने बैलों को ललकारा—"चल भैया ! और ज़रा ज़ोर से ! ···गा रे चम्पिया, नहीं तो मैं बैलों को धीरे-धीरे चलने को कहूँगा।"

जंगी की पुतोहू ने चम्पिया के कान के पास घूंघट ले जाकर कुछ कहा और चम्पिया ने धीमे से शुरू किया—"चन्दा की चाँदनी···"

बिरजू को गोद में लेकर बैठी उसकी माँ की इच्छा हुई कि वह भी साथ-साथ गीत गाये। बिरजू की माँ ने जंगी की पुतोहू की ओर देखा, धीरे-धीरे गुनगुना रही है वह भी। कितनी प्यारी पुतोहू है ! गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने ! बिरजू की माँ बेगम है, लाल पान की बेगम ! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है !

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केन्द्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झांकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मँगटिक्का पर चांद।···बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है।

आजाद परिन्दे

जब बग्गी-गाड़ी के कोचवान को मालूम हुआ कि पीछे पांवदान पर कोई शैतान लौंडा लटका हुआ है, तो उसने चाबुक फटकारकर एक गाली दी पीछे की ओर—"उतर ! हरामी का पिल्ला !"

हरबोलवा हँसकर उतर गया और पासवाली गली में घुसने से पहले उसने एक हवाई गाली फेंकी—"साले ! खनगिन का खसम !"

हरबोलवा ने यह गाली दो ही दिन पहले सीखी है। ठेलावाले भुजंगी

और भाजीवाले हलमान में कजिया शुरू हुआ। भुजंगी ने हलमान को बहन की गाली दी। हलमान उसकी छाती पर चढ़ बैठा—"बोल साले, खनगिन का खसम···!"

इस गली में बहुत दिन के बाद आया है हरबोलवा। इस गली में एक स्कूल है। छोटी-छोटी लड़कियाँ पढ़ती हैं।···नहीं। स्कूल के चपरासी ने उसी दिन अच्छी तरह पहचान लिया था हरबोलवा को—"साले, तुमको पहचानते हैं। तू ही न उस दिन मेरी बकरी को पकड़कर दूह रहा था? सब्जी बाग की कसाई-गली में रहता है न साले! यहाँ क्या करने आया है···?"

हरबोलवा ने हिम्मत बाँधकर जवाब दिया, "ए! गाली काहे देते है? हम यहाँ गली में खड़े हैं, किसी का कुछ लेते हैं?"

"साले! मुँह लगता है फिर? नाक की हड्डी तोड़ दूँगा, मारे झापड़ के। साला, यहाँ नाली में 'बेबी' लोग, 'तीन-मिनट' करती है और तू देखता है? भागो, रसाले!"

उस दिन, हरबोलवा ने अपने यार फरजन से कहा था, "ए? 'तीन मिनट' का माने जानता है, फरजनवाँ?"

···फरजन के मामू ने उस दिन फरजन को सजा दी थी—सुबह का नाश्ता बन्द कर दिया था। हरबोलवा उसके लटके हुए मुँह को देखकर समझ गया था। यार को दिलासा देने के लिए उसने कहा था—"अरे, तेरा एक ही दिन नाश्ता बन्द हुआ और इसी से तू हिम्मत हार गया? मेरा तो कभी-कभी दिन-भर का खाना 'गोल' कर दिया जाता है। ऊपर से मार और गाली अलग।···लो, सुनो! मैं तुमको 'तीन मिनट' का माने बतलाता हूँ।"

फरजन को दिखलाकर सामने चिपकी हुई एक विज्ञापन की तसवीर पर 'तुर्री' मारकर वह पेशाब करने लगा—"समझे 'तीन मिनट' का माने? ···हे हे हे हे!"

हरबोलवा ने देखा, स्कूल का फाटक बन्द है। छुट्टी है। उसने इधर-उधर देखा और पास की नाली में—जहाँ उस दिन छौंड़िया सब···। नहीं, दरबान के डर से उसका 'तीन मिनट' नहीं उतरा।···आज जब इधर आ ही गया है तो एक चक्कर मौसी के घर का लगा लेना ठीक होगा। उसने धीरे-धीरे अपनी नयी गाली पर सुर चढ़ाया—एक फ़िल्मी धुन—खनगिन का खसम, खनगिन का खसम, खनगिन···!

गली से बाहर निकलकर उसने देखा, उसी की उम्र के कुछ लड़के एक गधे की पूँछ में फूटा कनस्तर बाँधने की कोशिश में लगे हुए हैं। मगर गधा

है चालाक! पूंछ को इस तरह समेट लिया है कि···।

हरबोलवा ने अपने पॉकेट को टटोलकर देखा—हाँ, तार का 'हुक', है। उसने बिन माँगे ही मदद दी—"अजी, वैसे नहीं होगा। लो यह 'हुक'; इसको रस्सी में बाँधकर दुम में लपेट दो। फिर हुक खोंस दो।"

और, यहीं सुदरसन से उसकी दोस्ती हो गयी। गधे के पीछे तालियाँ बजा-बजाकर, कुछ दूर दौड़कर बहुत खुश हो गया हरबोलवा का मिजाज। गधा भागा जा रहा है और कनस्तर ढनढना रहा है। सुदरसन ने कहा, "ऐन मौके पर तुम आ गये भला।···कहाँ रहते हो? बाप क्या करता है? माँ है? भाई-बहन?"

सुदरसन ने बतलाया, उसकी सौतेली माँ है, लेकिन बहुत दुलार करती है। मगर बाप कसाई है। असल में उसका बाप ही है सौतेला! "माने, नहीं समझे? मेरा असल बाप जब मर गया, तो इस बाप ने मेरी माँ को फुसलाकर एक दिन अपने घर बुलाया और दरवाज़ा बन्द करके सिन्दूर दे दिया माँग में—जबरदस्ती। माँ रोने लगी। मगर रोने से क्या है? सिन्दूर दे दिया एक बार तो···। आखिर, मेरी माँ इसी शर्त पर राज़ी हुई कि सुदरसन को अपने बेटे की तरह रखोगे तो मैं तेरी बीवी, नहीं तो···।"

"ए! सुदरसनवाँ! तेरा बाप आ रहा है, इधर ही।"

"आने दे।"

हरबोलवा बोला, "मैं जाता हूँ। मुझे मौसी के घर जाना है।"

सुदरसन ने कहा, "ठहरो यार!"

"क्यों वे सूअर? बारह बज गये और तू सड़क पर 'खचड़इ' करता है?"

सुदरसन ने कहा, "आज छुट्टी है दुकान में।"

सुदरसन के 'कठबाप' ने कड़ककर कहा, "छुट्टी है तो घर क्यों नहीं गया अभी तक?···साले, एक दिन तेरी पीठ की चमड़ी फिर सेंकनी होगी। जा, घर जा!!"

सुदरसन का कठबाप जब मोड़ के पार चला गया तो सुदरसन ने अपने चेहरे पर हाथ फेरकर मुँह बनाया। मानो चेहरे पर लगी हुई गालियों को पोंछकर फेंक दिया। फिर बोला, "तू कहाँ जा रहा है?"

"मौसी के घर।"

"कहाँ रहती है तेरी मौसी?"

"पगलखनवा के पास।"

हरबोलवा ने पूछा, "और तुम्हारा घर किधर है? किस दुकान में काम करते हो?"

सुदरसन ने हाथ से एक ओर दिखलाते हुए कहा, "यहीं, गली में। पीर साहेब का मजार देखा है ? उसी के पास। चलो यार ! देखें तुम्हारी मौसी का घर। चलो।"

"तुम ? तुम मेरी मौसी के घर क्यों जाओगे ?"

हरबोलवा नहीं चाहता था कि सुदरसन, जिससे उसकी जान-पहचान नहीं कभी की, ऐसे लड़के को अपनी मौसी के घर ले चले। मगर, सुदरसन तो जोंक की तरह चिपक गया है।

कारपोरेशन के सामने, पानी का बम्बा बिगड़ा हुआ देखकर दोनों प्रसन्न हुए। पानी का फ़व्वारा !

"नहायेगा ?"

"और तुम ?"

सुदरसन ने पैंट खोलकर बम्बे के फ़व्वारे से अपनी देह को ढँक लिया मानो। हरबोलवा किन्तु आगे-पीछे की बात सोचने लगा। फिर अपने पाकेट से साबुन का एक टुकड़ा निकालकर ज़मीन पर फेंकते हुए बोला, "ज़रा पाजामा साफ़ कर लें।"

दोनों बहुत देर तक फ़व्वारे में नंगे नहाते रहे। बीच-बीच में टोटी में उँगली डालकर पिचकारी छोड़ते।

लेकिन मुहल्ले के लड़कों को तब तक सूचना मिल गयी थी। वे एक-दूसरे को नाम लेकर पुकारते हुए दौड़े—धर-धर-धर सालों को···!

हरबोलवा डरा। मगर सुदरसन लापरवाही से कुल्ला करता रहा।

मुहल्ले के लड़कों का 'मेट', एक भालू जैसा लड़का, आगे बढ़कर बोला, "कहाँ रहता है बे ? यहाँ लँगटा होकर नहाने आया है, खचड़े ?"

हरबोलवा ने अपने अधसूखे पाजामे को ही जल्दी-जल्दी पहन लिया। सुदरसन हँसा। और सुदरसन की हँसी ठीक जगह पर जाकर लगी। मेट ने अपनी टोली को सावधान किया—"यह साला बड़ा चालू मालूम होता है। होशियार रहना !"

सुदरसन ने कहा, "तुम्हारा नाम डफाली है न ?"

आश्चर्य ! सुदरसन के मुँह से अपना नाम सुनकर डफाली के सिर के 'कदमकुट्टी बाल' खड़े हो गये। उसकी आँखें गोल हो गयीं। बोला, "तुम··· तुम कहाँ रहते हो ? तुम कौन···तुमने मेरा नाम कैसे जाना ?"

सुदरसन बोला, "तुम्हारी माँ तुमको साथ लेकर एक दिन हकीम साहेब के दवाखाने में गयी थी न ?"

डफाली का मुँह खुल गया। वह बोला, "हाँ !"

सुदरसन हँसता रहा, पूर्ववत। डफाली ने अपनी टोली के सदस्यों से

कहा, "अरे, यह जान-पहचान का है रे !"

डफाली अपनी टोली के साथ गली में ग़ायब हो गया। तब सुदरसन बोला, "जानते हो, इतना बड़ा हो गया है और बिछावन में पेशाब करता है ?"

हरबोलवा भी हँसने लगा, "इसीलिए भागा ससुर।"

किन्तु आज हरबोलवा की मौसी उसको देखकर ज़रा भी खुश नहीं हुई। सुदरसन को देख बोली, "और ई कौन है ?···दिदिया तुमको पीटती है, सो ठीक ही करती है। दुनिया-भर के लुच्चे-लफंगों के साथ इधर-उधर मटरगश्ती करता फिरेगा तो एक दिन जेल जायेगा। जा, घर जा !"

हरबोलवा की समझ में नहीं आया कुछ। आज मौसी इस तरह अचानक बिगड़ क्यों गयी ?

सुदरसन ने रास्ते में पूछा, "यार, वह झोंपड़ी के अन्दर कौन बैठा था ? वही तुम्हारा मौसा है ?"

"मौसा ? नहीं तो। मौसा तो बरौनी में रहते हैं।"

"तब वह लाल कमीजवाला कौन था ?"

"किधर ?"

"अरे, मैंने झाँककर देखा था। इसीलिए तुम्हारी मौसी धड़फड़ाकर झोंपड़ी से बाहर आयी थी और तुमको डाँटने लगी थी।"

"ओ !"

हरबोलवा चुप रहा। सुदरसन बोला, "एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेगा ?···तेरी मौसी छिनाल है।"

"धेत्त !"

"धेत्त क्या ?···मैंने झाँककर देखा तो···।"

सुदरसन की हँसी पर हरबोलवा का चेहरा ठीक डफाली की तरह हो गया। मानो वह भी बिछावन में पेशाब करता हो ! और यह बात सुदरसन को मालूम हो गयी।

लौटती बार कारपोरेशन के सामनेवाले बम्बे के पास वे कुछ देर तक रुके रहे।

हरबोलवा ने पूछा, "तुम किस चीज की दुकान में काम करते हो ?"

"दफ्तरी की दुकान में।···साला, सड़ी हुई बासी लेई की गन्ध के मारे तुम्हारा दिमाग फट जायेगा ! ···करेगा काम ?"

"कितना मिलता है ?"

"मोट पन्द्रह रुपये।"

"बस ?"

"तो कागज पर लेई लगाने का और कितना मिलेगा—एक सौ ? बोल, काम करेगा ?"

मखनियाँ कुआं के नुक्कड़ पर कुछ हो गया है। दोनों ने दुलकी चाल पकड़ी। लेकिन जब वे पहुँचे, खेला ख़त्म हो चुका था। स्कूटर-रिक्शा एक्सिडेण्ट में दो आदमी घायल हुए थे और दोनों अस्पताल जा चुके थे ! दोनों को पछतावा हुआ।

हरबोलवा ने उलटकर देखा, सुदरसन एक बीड़ी की दुकान पर रुक गया है। बीड़ी सुलगाकर वह तेज़ी से हरबोलवा के पास आया—"बीड़ी पीयेगा ?"

"बीड़ी नहीं पीता।"

हरबोलवा जब अपने मुहल्ले की ओर जाने लगा तो सुदरसन का दिल अचानक बुझ गया। उसने हरबोलवा को पुकारा, "ए ! सुनो !"

हरबोलवा रुका—"क्या है ?"

सुदरसन बोला, "तुम्हारे घर चलूँ तुम्हारे साथ ?"

"नहीं। बेकार मेरी माँ तुमको भी गाली देगी।"

"तू काम करेगा ?"

"बाबू से पूछूँगा ?···मुझे देरी हो रही है, चलता हूँ।"

"ठहरो ज़रा, यार ! ···सच ! लगता है तुमसे बहुत दिनों की जान-पहचान है।"

हरबोलवा हँसा।···शायद, उसकी हँसी ने सुदरसन को मोह लिया है। उसने पूछा, "तुम लकड़ी के कोयले से मंजन करते हो ?"

"हाँ।"

"मैं भी करूँगा।"

हरबोलवा चलने लगा तो सुदरसन ने उसके दोनों हाथों को पकड़कर हँसते हुए कहा, "कहा-सुना माफ करना, भाई !"

सुदरसन की आँखों में न जाने क्या दीखा कि हठात हरबोलवा का दिल उमड़ आया। वह रुक गया। उसने उदास सुदरसन से पूछा, "क्या हुआ ?"

"साला आज बहुत मार पड़ेगी।"

"तुझे ?"

"साला, जब तक मूँछ नहीं जमेगी, तब तक बालिग नहीं हो सकते और जब तक नाबालिग रहोगे, इसी तरह रोज लत्तम-जुत्तम ! साला घर जाने का जी नहीं करता।···कहीं भाग चलने का मन करता है।"

बाकरगंज मसजिद के पास दोनों बहुत देर तक उदास खड़े रहे—नीम की छाया में।

"जब तक बालिग नहीं हो जाते रोज लत्तम-जुत्तम सहना होगा साला ! ···सुनो, एक काम करेगा ? सलीमा में 'टनटन भाजा' बेचेगा ?"

"सलीमा में टनटन भाजा ?"

सुदरसन ने बतलाया—'लौन-सलीमा' के पास एक टनटन भाजा कम्पनी है। उसमें उसके कई दोस्त काम करते हैं। खूब मौज का काम है, यार ! मगर जमानतदार ही नहीं मिलता कोई। और, बाप साला काहे चाहेगा कि उसका बेटा टनटन भाजा बेचकर पैसा जमा करे ?

सुदरसन ने बतलाया, "बीस रुपये महीना ! एक दम आज़ादी का काम और फोकट में सलीमा देखो, सो ऊपर से।"

सुदरसन ने अपने बाप से कहा था। मगर सुदरसन के बाप ने कहा, "टनटन भाजा कम्पनी का मालिक एक सौ रुपया पेशगी देगा ? दफ्तरी ने दो सौ रुपया एडवांस दिया है।"

सुदरसन ने हरबोलवा के कन्धे पर हाथ रखकर बहुत प्यार-भरे सुर में पूछा, "बोल ना यार, टनटन भाजा कम्पनी में काम करेगा ?"

"मगर जमानतदार ?"

"उसका इन्तजाम हो जायेगा।"

"कहाँ ?"

"हमारे मुहल्ले में एक अमजद मिस्तरी है। मगर भारी खचड़ा है।" सुदरसन ने थूक फेंकते हुए कहा, "यार, एक बार कोई जमानतदार हो जाये। एक बार टनटन भाजा कम्पनी की नौकरी मिल जाये, फिर कौन बाप ले जाता है पकड़कर घर और कौन साला मारता है ? ···मगर अमजद मिस्तरी साला भारी खचड़ा है।"

"खचड़ा है तो जमानत कैसे···?"

सुदरसन हँसा—"खचड़ा है इसीलिए तो जमानतदार होगा।"

बाकरगंज मुहल्ले के पास ही कहीं शादी के ढोल बजने लगे। दोनों ने एक लम्बी साँस ली।

हरबोलवा ने कहा, "इस साल खूब लगन हैं। तुम्हारे मुहल्ले में कोई शादी नहीं ? हमारी गली में एक ही रात में पाँच···।"

सुदरसन हँसा—"मारो यार गोली ! शादी ! जब तक मूँछ-दाढ़ी नहीं उगता साला, नाबालिग ही रहेंगे हम लोग।···चलो, अमजद मिस्तरी के घर चलें।"

हरबोलवा को हठात लगा, सुदरसन ही उसका सब कुछ है। सुदरसन के सिवा इस दुनिया मे अपना कोई नहीं। उसका दुख समझनेवाला यह

सुदरसन···।

सुदरसन के हाथों को हरबोलवा ने पकड़ लिया—"मुझे डर लगता है लेकिन···।"

"काहे का डर ?"

"बाप···।"

"अरे, एक बार कम्पनी में घुसने तो दे, तब देखना है बापों को।··· ए, देख इधर···इसमें तेल लगावेगा आकर तुम्हारा और हमारा बाप-माँ, मौसा-मौसी—सब। समझे ?"

हरबोलवा ने हँसकर सुदरसन के गले में हाथ डाल दिया—"तो मिल जायेगी नौकरी ?"

"अमजद मिस्तरी को तेल लगाना होगा।"

"लगायेंगे ! कम्पनी की नौकरी के लिए जो करना होगा करेंगे। अब लौटकर घर नहीं जाना है।···थूक है घर को !"

"पक्का ?"

"पक्का !"

जड़ाऊ मुखड़ा

बटुक बाबू ने मन-ही-मन तय कर लिया—ऑपरेशन करवाना ही होगा। और, इसी जाड़े में।

बटुक बाबू पिछले एक सप्ताह से मानसिक अशान्ति भोग रहे थे, चुप-चाप ! जब-जब उनकी इकलौती बेटी बुला सामने आती, बटुक बाबू का चेहरा उतर जाता। बुला की ओर आँखें उठाकर देख नहीं सकते। उनकी ऐसी गम्भीर और उदास मुद्रा को देखकर बुला डर से कुछ नहीं बोलती। बाप के जी के बारे में माँ से भी कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती।

पत्नी ने कई बार पूछा तो कोई खुलासा जवाब नहीं दे सके बटुक बाबू।

कल रात बुला अपनी माँ के साथ मच्छरदानी के अन्दर सो रही थी। बटुक बाबू धीरे से उठे। हाथ में छोटा टॉर्च लिया। फिर कुछ सोचकर रख दिया। टेबिल-लैम्प का स्विच दबाया। दबे पाँव पलंग के पास गये और

सोयी हुई बुला के चेहरे को ग़ौर से देखने लगे; कुछ देखकर सिहर पड़े। पत्नी शायद सब कुछ देख रही थी। धीमी आवाज़ में बोली, "यह क्या ?"

बटुक बाबू हड़बड़ाकर उठे। इशारे से कुछ कहा और टेबिल-लैम्प ऑफ़ करके बैठक में गये। इशारा समझकर पत्नी उनके पीछे-पीछे गयी।

बटुक बाबू ने हाथ के इशारे से ही पत्नी को अपने पास बैठने को कहा। पत्नी धीरे से सोने के कमरे का दरवाजा बन्द कर आयी। बटुक बाबू ने फुसफुसाकर कहा, "बुला के चेहरे पर···'मस्से' पर एक रोयाँ उग आया है। तुमने देखा है ?"

पत्नी ने लम्बी साँस ली। जी हल्का हुआ। बोली, "हाँ ! देखा है।··· तो क्या हुआ ?"

"तो क्या हुआ ?" बटुक बाबू को अचरज हुआ। माँ होकर भी इन बातों की ओर ध्यान नहीं देती। बोले, "मैं आज ही नकुल को चिट्टी लिख देता हूँ। इसी छुट्टी में पटना चलकर ऑपरेशन···।"

'ऑपरेशन' का नाम सुनकर पत्नी सिहर पड़ी—"हुँहुँ···!"

"क्या, हुँहुँ ?"

"आपरेशन-उपरेशन करके कहीं और भी चेहरा खराब···।"

"प्लास्टिक-सर्जरी के ज़माने में भी तुम ऐसी बातें करती हो ?"

पिछले सोलह साल से जब-जब बटुक बाबू ने ऑपरेशन करवाने का प्रस्ताव किया, पत्नी ने समर्थन नहीं किया। और राई-भर का 'मस्सा' बढ़ते-बढ़ते अब गोलमिर्च के बराबर हो गया है; उसमें एक केश भी उग आया है।···अब भी कहती है कि ऑपरेशन नहीं !

बटुक बाबू ने नाक सिकोड़कर कहा, "कितना भद्दा लगता है यह रोयाँ ! ···तितली के सूँड की तरह।···परम सुन्दर चेहरे पर यह गोल मिर्च जैसा मस्सा और उसमें···छि: छि: !"

पत्नी को ऑपरेशन के बदले अपने बड़े भैया की बात याद आयी—तुम लोग इतमीनान से बैठे हो, क्यों ? लड़की बड़ी हो रही है। 'भोलेनाथ' (अर्थात बटुक बाबू) से कहो, 'सुपात्र' पर नज़र रखें।

पत्नी ने पूछा—"भगवानपुर से फिर कोई चिट्ठी नहीं आयी ?"

बटुक बाबू नाराज़ हो गये—"भगवानपुर से क्या चिट्ठी आयेगी ?··· दुनिया में सुन्दर लड़कियों की कमी है जो तुम्हारी···ऐसी लड़की को वे पसन्द करेंगे, जिसके गाल पर गोलमिर्च जैसा···?"

पत्नी हँस पड़ी। बटुक बाबू चिढ़ गये—"तुम हँसती हो ?"

"तो अभी इतनी रात में रोकर क्या होगा ?"

"मुझे नींद नहीं आयेगी।"

पत्नी समझ गयी, बात हँसी में टलनेवाली नहीं। अतः वह भी गम्भीर हो गयी। दोनों बहुत देर तक विचार-विमर्श करते रहे। बात तय हो गयी—इसी छुट्टी में यानी पन्द्रह दिन के अन्दर ही चलकर ऑपरेशन करवा दिया जाये!

दूसरे दिन से बटुक बाबू से ज्यादा परेशान उनकी पत्नी दीखने लगी। वह जब-जब बुला के चेहरे को ग़ौर से देखती, बुला अवाक् हो जाती। उसके गाल पर जड़े हुए काले मस्से का रोयाँ थर-थर काँपने लगता। बुला की माँ को लगता, तितली का सूँड बढ़ता आ रहा है···आ रहा है! वह सिहर उठती।

पटना से बटुक बाबू के छोटे भाई प्रोफेसर नकुल बाबू की चिट्ठी आयी और पति-पत्नी ने पटना चलने का प्रोग्राम बना लिया। पास-पड़ोस के लोग जान गये। लेकिन ऑपरेशन करवाने की बात उन्होंने किसी से नहीं बतायी।···क्या ज़रूरत!

सत्रह साल पहले बुला का जन्म हुआ। उसके बाद फिर कोई सन्तान नहीं हुई। बटुक बाबू के छोटे भाई प्रोफेसर नकुल ने कई बार अपने भाई और भाभी को समझाकर कहा—"मामूली ऑपरेशन डी. एन. सी. करवा लेने से ही फिर···।"

किन्तु वे कभी तैयार नहीं हुए। हँसकर उड़ा देते—"क्या ज़रूरत है?···बुला ही हमारी बेटी, बुला ही बेटा!"

बुला पिछले साल स्थानीय कॉलेज में दाखिल हुई है। विज्ञान पढ़ती है। बटुक बाबू को जीवन में अब तक कभी सिर-दर्द भी नहीं हुआ। मौसमी सर्दी-बुखार के अलावा पत्नी भी बीमार नहीं पड़ी। इसलिए बुला का स्वास्थ्य भी सुन्दर है। मुफस्सिल के क़स्बे में जन्मी और पली बुला अपने कॉलेज की 'कबड्डी-टीम' की कैप्टन है।

बटुक बाबू इतिहास के शिक्षक हैं। किन्तु स्वभाव से पूरे दर्शनशास्त्र-विभाग के व्यक्ति हैं। इसलिए कभी-कभी गृहिणी से मनमुटाव भी हो जाता है।···पाँच साल पहले, इसी तरह बुला को लेकर उन्होंने एक 'समस्या' खड़ी कर ली थी—अपने दिमाग़ में। अपनी स्त्री से बार-बार कहते—"माँ होकर भी तुम इन बातों की ओर ध्यान नहीं देतीं!···वह डर के मारे सूखकर काँटा हो गयी है। समझती है, कोई रोग हो गया है।···उसको सिखाना होगा···सेनिटरी-टॉवेल और स्पंज का इस्तेमाल कैसे···तुम माँ होकर भी इन बातों पर···।"

बटुक बाबू को साहित्य और संगीत में तनिक भी रुचि नहीं। उपन्यास और कहानियों से उतना ही चिढ़ते हैं जितना सिनेमा और थियेटर से।

इसलिए चाहते थे कि उनकी पत्नी और पुत्री न कभी उपन्यास-कहानी पढ़ें और न सिनेमा-थियेटर देखें। किन्तु पत्नी महीने में दो-तीन बार सिनेमा देख आती है। बुला उपन्यास-कहानी पढ़े बिना रह नहीं सकती। बाप से तर्क करने लगी—"बाबा! तुम सभी को एक ही लाठी से हाँकते हो···।" अन्त में मालूम हुआ कि बटुक बाबू उपन्यास-कहानी के विरुद्ध नहीं, 'प्रेम-विवाह' यानी 'लव मैरेज' के खिलाफ हैं···।

बुला हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी थी।

बुला कभी पटना नहीं गयी। लेकिन काकी और चचेरे भाई-बहनों के मुँह से बहुत बार पटना के मुहल्ले और सड़कों के बारे में सुन चुकी है।···बाँकीपुर स्टेशन पर पहुँचकर उसे लगा—यहाँ वह पहले भी आ चुकी है।

पटना आकर बुला को मालूम हुआ कि सैर-सपाटे के लिए नहीं, उसके 'मस्से' के ऑपरेशन के लिए पटना आना हुआ है। चचेरी बहन मीरा ने बताया।

बुला काकी के ड्रेसिंग-टेबिल के आइने में अपने गाल पर जड़े मस्से को देखती रहती है।···सभी उसके चेहरे की ओर देखते हैं। चेहरे को नहीं, मस्से को। मस्से में उगे हुए 'लोम' को। उसकी अपनी ही आँखें हमेशा अपने गाल पर केन्द्रित रहने लगीं।

प्रोफेसर नकुल ने प्लास्टिक-सर्जन डॉक्टर चोपड़ा से बातें कर ली थीं। इसलिए दूसरे ही दिन से सिलसिला शुरू हुआ। डॉक्टर चोपड़ा आये। मस्से को देखा। उँगली से छूकर देखा। अपने सहायक युवक डॉक्टर को कुछ नोट करवाया और चले गये।

बटुक बाबू और उनकी पत्नी ने डॉक्टर चोपड़ा के सहायक युवक से एक ही साथ पूछा—"आप कम्पाउण्डर हैं?···स्टूडेंट?"

जवाब दिया हँसकर नकुल बाबू की बड़ी बेटी मीरा ने, "कम्पाउण्डर-स्टूडेंट नहीं। डॉक्टर उमेश हैं। 'स्टेट्स' से आये हैं।"

"किस 'स्टेट' से?" बटुक बाबू ने पूछा। फिर तुरन्त समझकर बोले, "ओ! स्टेट्स···माने···अमेरिका से!"

डॉक्टर उमेश बोले, "खून की जाँच···।"

"खून की जाँच?" बटुक बाबू अचरज में पड़े, "छोटे-से मस्से के ऑपरेशन के लिए भी खून की जाँच?"

पत्नी बोली, "मस्सा कोई रोग तो नहीं।"

डॉक्टर ने बताया, "एक ही क़िस्म की परीक्षा नहीं। आज डब्ल्यू.

आर. के लिए खून देना होगा। कल आकर एस. आर. और टोटल डेफरेंसियल।"

बटुक बाबू ने पूछा, "यह डब्ल्यू. आर. क्या है ?"

"वाशरमैंस रिएक्शन।"

पत्नी बोली, "इसमें धोबी की क्या बात···?"

डॉक्टर ने समझाया, "खून में गरमी-सिफ़लिस वग़ैरह के बीजाणु हैं या नहीं···?"

डॉक्टर उमेश अपनी बात पूरी नहीं कर सके। बटुक बाबू ने घोर प्रतिवाद के स्वर में कहा, "आप कैसी बात करते हैं ! सिफ़लिस-गरमी ?"

डॉक्टर उमेश ने बताया कि बेकार बहस करने को उनके पास समय नहीं। बिना इस 'जांच' के कोई ऑपरेशन नहीं हो सकता।

किन्तु बात सुलझने के बदले उलझती गयी। बटुक बाबू को लगा, डॉक्टर उमेश ने उनके पूर्व-पुरखों को ही नहीं, उनकी पत्नी के दादे-परदादे तक को भद्दी गालियाँ दे दी हैं।···जरा भी 'शील-स्वभाव' नहीं। मुँह में जो आया, बोलता गया।

डॉक्टर उमेश ने बताया कि देर करने से पैथोलॉजी डिपार्टमेंट बन्द हो जायेगा। फिर आज खून नहीं लिया जा सकेगा। बटुक बाबू अपनी स्त्री और पुत्री के साथ डॉक्टर उमेश की गाड़ी में जा बैठे। रास्ते-भर वह मन-ही-मन कटते रहे। और जब मेडिकल-कॉलेज के पैथोलॉजी डिपार्टमेंट में पहुँचे तो उनको लगा, उनकी देह में दुनिया-भर के बुरे-छुतैले रोगों के कीटाणु कुलबुला रहे हैं। बेंचों पर बैठे हुए और बरामदे में आस-पास खड़े लोगों से अपनी देह बचाकर वे एक किनारे नाक पर रूमाल डालकर खड़े रहे। पत्नी को मिचली आने लगी। किन्तु डॉक्टर ने जब बुला का नाम लेकर पुकारा, तो वह निडर होकर आगे बढ़ गयी। बटुक बाबू और उनकी पत्नी को डॉक्टर ने अन्दर नहीं जाने दिया—"ओनली पेशेण्ट···!"

डॉक्टर उमेश ने पूछा, "डर तो नहीं लगता ?"

बुला बोली, "जी नहीं।"

सुई डाक्टर उमेश ने नहीं, दूसरे डॉक्टर ने गड़ायी। बहुत देर तक उन्हें नस ही नहीं मिली। थोड़ा रक्तपात हुआ। डॉक्टर उमेश पास खड़े थे और बुला को भरोसा दे रहे थे।

बुला डॉक्टर उमेश के साथ बाहर निकली। उन्होंने देखा, सीढ़ियों के नीचे बटुक बाबू सिर थामकर बैठे हैं और पत्नी अख़बार से उनके सिर पर हवा कर रही है।···बटुक बाबू ने खिड़की से झाँककर देखा था—बुला के 'लहू-लुहान' बाँह से टप-टप कर चूता हुआ खून। बस, चक्कर आ गया।

डॉक्टर उमेश ने बताया कि एस. आर. के लिए अब यहाँ आने की जरूरत नहीं होगी। घर पर ही खून ले लिया जायेगा। रास्ते में बटुक बाबू के मुँह से एक बार फिर निकला, "एक छोटे-से मस्से को काटने के लिए इतना हंगामा !"

डॉक्टर ने कहा, "फ़र्ज कीजिये, मस्सा काटने के बाद खून बन्द नहीं हो, तब ?"

"ऐसा भी होता है ?" बटुक बाबू की आँखें गोल हो गयीं।

"हाँ। इसीलिए इतनी परीक्षा और जाँच।"

बुला की माँ ने पूछा, "तब तो मामूली नहीं, खतरनाक ऑपरेशन है यह ?"

"है तो मामूली ही, लेकिन ख़तरा तो है। फ़र्ज़ कीजिये, घाव बिगड़ जाये तो 'ग्राफ्टिंग' करना होगा···।"

"ग्राफ्टिंग क्या ?"

"ज़िन्दा चमड़ी की चिप्पी।"

"जिन्दा चमड़ी ?"

"हाँ, हिप यानी चूतड़ यानी पुट्ठे की चमड़ी तराशकर···।"

"किसकी ? किसके पुट्ठे की ?"

"रोगी के।"

इस बार ऐसा लगा कि पति-पत्नी दोनों एक ही साथ बेहोश हो जायेंगे। लेकिन बुला चुपचाप बैठी मुसकराती रही।

डेरे पर पहुँचकर बटुक बाबू ने नकुल बाबू से सारा किस्सा बताया। नकुल बाबू हँसे। बोले, "भैया, आप लोग नाहक क्यों परेशान होते हैं ! कल से जहाँ कहीं भी जाना होगा, बुला के साथ मीरा जायेगी।"

डॉक्टर उमेश सुबह आकर बुला का खून ले गये और बुला को दस बजे डॉक्टर चोपड़ा के क्लिनिक में बुलाया।

बुला के साथ मीरा गयी।

बटुक बाबू ने अपनी स्त्री से कहा, "लगता है, मामूली ऑपरेशन नहीं, लेकिन कोई चारा भी नहीं।"

पत्नी को अब भी मिचली आ रही है। इशारे से बोली, "अब भगवान जो करें !"

बुला और मीरा दो घण्टे के बाद लौटीं। पति-पत्नी 'धड़फड़ा' कर उठे। मानो, खोयी हुई लड़की मिल गयी।

डॉक्टर उमेश साँझ को बुरी खबर ले आये—"डब्ल्यू. आर. के लिए फिर खून देना होगा।···सन्देहजनक है।"

सुबह बुला-मीरा फिर गयीं। और चार घण्टे के बाद लौटीं। मीरा बोली, "हम लोग अस्पताल के मैदान में लगी प्रदर्शनी देख आये। डॉक्टर उमेश का पाँच रुपया खर्चा करवा दिया···'क्वालिटी' की आइसक्रीम···।"

बटुक बाबू ने पूछा, "अब तो खून नहीं देना होगा?"

बटुक बाबू को रह-रहकर डॉक्टर उमेश की बातें याद आती हैं—'फ़र्ज कीजिये, खून बन्द नहीं हो।···ग्राफ्टिंग, चूतड़ की ज़िन्दा चमड़ी तराश-कर···।'

तीन-चार दिन तक यही सिलसिला रहा। बुला और मीरा रिक्शा में बैठकर क्लिनिक जातीं। बटुक बाबू अपनी पत्नी के साथ लक्ष्मीनारायण मन्दिर, कालीबाड़ी और पटनदेवी के मन्दिर की ओर जाते।

सातवें दिन नकुल बाबू ने संवाद दिया, "डॉक्टर उमेश कह रहे थे कि ऑपरेशन नहीं हो सकेगा।"

"क्यों?" पति-पत्नी ने एक ही साथ पूछा।

नकुल बाबू मुस्कराकर बोले, "पता नहीं क्यों? क्यों मीरा, क्या बात है? बात क्या है? बुला कहाँ है?"

मीरा हँसती हुई और बुला तनिक लजाती हुई आयी।

नकुल बाबू ने पूछा, "क्या बात हुई, मीरा? डॉक्टर उमेश क्या कह रहे थे?"

"दीदी से पूछ रहे थे कि मस्से को क्यों कटवाना चाहती है?"

बटुक बाबू बोले, "यह डॉक्टर उमेश थोड़ा पागल है···।"

नकुल बाबू ने कहा, "भैया! डॉक्टर उमेश पर पटना मेडिकल कॉलेज को गर्व है···गौरव हैं डॉक्टर उमेश!"

मीरा कहती गयी, "दीदी बोली कि माँ और बाबूजी चाहते हैं। तब डॉक्टर साहब ने कहा—वे क्यों कटवाना चाहते हैं? मस्सा तो आपके चेहरे पर है; आप नहीं चाहें तो···। दीदी कुछ नहीं बोली। तब डॉक्टर साहब ने पूछा—आपको बुरा लगता है यह मस्सा? दीदी कुछ भी नहीं बोली। तो डॉक्टर साहब बोले—इसको काटने के बाद आपका चेहरा बदसूरत भी हो जा सकता है, किसी की नजर में। फिर बोले कि जैसे यह आपके गले में जो जड़ाऊ हार है, इसका पत्थर निकाल दिया जाये तो कैसा लगेगा?"

बटुक बाबू का चेहरा लाल हो गया—"नकुल, यह डॉक्टर तुम्हारे पटना मेडिकल कॉलेज का गौरव हो या जो कुछ भी हो, मगर यह आदमी अच्छा नहीं। इतनी और ऐसी-ऐसी बातें पूछने की क्या ज़रूरत?"

नकुल बाबू की स्त्री ने बटुक बाबू की पत्नी को हँसकर अन्दर बुलाया—"दीदी! ज़रा अन्दर आइये···।"

मीरा बोली, "डॉक्टर उमेश की माँ आयी हैं।"

बटुक बाबू की समझ में कोई बात नहीं आयी।

अन्दर न जाने क्या हुआ कि मीरा की बंगालिन सहेलियों ने मिलकर शंख फूँकना शुरू किया। एक साथ कई शंख बज उठे।

नकुल बाबू का अष्टवर्षीय पुत्र गोपाल दौड़ता हुआ आया—"बुला दीदी को डॉक्टर उमेश की माँ ने गोदी में बैठाकर चुम्मा ले लिया···।"

एकसाथ कई शंख बज रहे थे। नकुल बाबू हँस-हँसकर अपने बड़े भाई बटुक बाबू को समझा रहे थे। और बटुक एकदम नहीं समझ पा रहे थे कि डॉक्टर उमेश के नहीं चाहने पर ऑपरेशन क्यों नहीं होगा!

जैव

निर्मल ने—मन्द-मन्द मुस्कराती, कमरे में प्रवेश करती हुई—विभावती से पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

विभावती हँसती हुई बोली—"बात क्या होगी? बात जो होनी थी सो हो गयी।"

विभा ने स्वामी के हाथ में आज की डाक से आयी हुई चिट्ठी दी। निर्मल ने पढ़ना शुरू किया—"पूजनीया भाभी,···आगे समाचार यह कि पिछले सप्ताह से ही सुबह उठकर उल्टी-मतली···लेकिन, मेरी सासजी बहुत खुश हैं···।"

पत्र में ननद ने 'भौजाई' को विस्तारपूर्वक यानी खोलकर सब कुछ लिखा है। किन्तु निर्मल इससे आगे कुछ नहीं पढ़ सका।

"जो बात होनी थी सो हो गयी न? मैं जानती थी। चाहे पचास रुपये की किताब दीजिए 'प्रेमोपहार' या सौ रुपये की—जो बात होनी थी सो हो गयी।"—विभा हँसकर बोली।

निर्मल चिढ़ गया—"बेमौके की ऐसी हँसी सुनकर मेरी देह जल जाती है।"

विभावती समझ जाती है, पति अभी बहुत चिढ़े हुए हैं। वह कमरे से बाहर चली गयी, हँसती-मुस्कराती।

निर्मल के सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा है। उसका माथा चकरा रहा

है। कान के पास झींगुर बोलने लगे हैं।···शारदा गर्भवती माने प्रेगनेण्ट हो गयी ? उसकी एकमात्र छोटी बहन, सोलह साल की शारदा—बिना माँ-बाप की—'कोरपच्छू' लड़की। निर्मल से ग्यारह साल छोटी शारदा ! निर्मल की माँ ने आँख मूंदने के पहले विभावती से कहा था— बहू ! अब तू ही इसकी माँ···पिता ने मरते समय निर्मल से कहा था—"बेटा ! बस, एक दायित्व तुम्हारे सिर पर दे जाता हूँ। शारदा को 'सुपात्र' के हाथ में देना।" ···इतना खर्च-वर्च सब बेकार ? यह तो पूरा 'कुपात्र' निकला। और, इसी 'कुपात्र' के फेर में पड़कर उसने अपनी दुलारी बहन की शादी कच्ची उम्र में ही कर दी···अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में उपलब्ध—दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनानेवाली प्रसिद्ध किताबों का एक सेट उसने विशेष रूप से भेंट किया था, शारदा के पति प्रोफेसर राय को।···

निर्मल ने हिसाब लगाकर देखा···तो, इसका अर्थ हुआ कि सुहागरात में ही···? शारदा की शादी हुए तीन ही महीने हुए हैं। अभी 'प्रिंस होटल' का बिल भुगतान देना बाकी ही है। और···और···?

पड़ोस के फ्लैट की बूढ़ी मौसी आयी है। शारदा को बहुत प्यार करती थी, बूढ़ी मौसी। विभावती ने मौसी को भी शुभ संवाद सुना दिया—"हाँ, तीन महीने···"

"विभा !"—निर्मल ने उच्च स्वर में ही पुकारा। प्रसन्नता से बूढ़ी मौसी के चेहरे की झुर्रियाँ खिल पड़ीं।

"कर दिया न ब्राडकास्ट ? तुम लोगों के पेट में कोई बात जो पचे···।"

इस बार विभा ने जवाब दिया—"तुम तो चिढ़कर बेकार भुर्ता हुए जा रहे हो।"

"बेकार माने ? ···शर्म की बात है। इस कच्ची उम्र में···मुश्किल है ···शारदा मर गयी समझ लो।"

"क्यों 'कुलच्छन' की बोली बोलते हो ? माथा गर्म करने से कुछ नहीं होगा। आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे दो।"

विभा रसोईघर में चली गयी।

निर्मल सोचने लगा—सच ही तो ! माथा गर्म करने से क्या होगा। आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे देना ठीक होगा। प्रोफेसर सुकुमार राय ! फर्स्ट क्लास फर्स्ट···गोल्ड मेडलिस्ट हैं। कुपात्र कहीं का ! ···आजकल के नौजवानों में यही ऐब—डिग्री से लदे हुए गधे ! ···लेकिन, हिसाब से तो···? सुहागरात में ही 'कंसीव' किया होगा, शारदा ने। क्योंकि, उसके बाद 'मेहमान' भागलपुर चला गया था। दो महीने के बाद आकर शारदा को ले गया है। और एक महीने के बाद यह पत्र···?

दोपहर को भोजन 'रुचा' नहीं, तो विभा ने मुंह फुला दिया—"इस तरह खाना-पीना छोड़ने से क्या होगा ?"

"विभा ! मैं प्रार्थना करता हूँ···मुझे शान्तिपूर्वक इस समस्या पर कुछ सोचने भी दोगी ?"

"पूछती हूँ, यह भी कोई समस्या है ?"

"तुम भी बूढ़ी मौसी के सुर में सुर मिलाकर ऐसी बातें करोगी, इसकी मुझे उम्मीद नहीं थी।"

"तो क्या करूँ ? सिर पकड़कर रोऊँ ?"

"विभा···" निर्मल की आँखें डबडबा आयीं—"शारदा मर जायेगी। जरूर मर जायेगी।"

"तुम्हारे कहने से मरेगी ? कुछ नहीं होगा। तुम्हारी दुलारी बहन शारदा को एक गोलमटोल सुन्दर मुन्ना के सिवा और कुछ नहीं होगा।"

"वह इतनी दुबली है सो···।"

"सो जानेगी डॉ. मिस जोजेफ और जानेंगे स्त्री-रोग के पुरुष विशेषज्ञ डॉक्टर शर्मा···।"

डॉक्टर शर्मा का नाम सुनते ही निर्मल को काम की बात सूझी—क्यों न डॉक्टर शर्मा को फोन करके सलाह ले ? उसने डिरेक्टरी में डॉक्टर शर्मा का नम्बर खोजकर निकाला और डिरेक्टरी के मुखपृष्ठ पर लिखने के बाद उसने डायल पर नम्बर मिलाया। चोंगा रखकर, फिर डायल किया। बहुत देर तक उधर घण्टी बजती रही। फिर, किसी आदमी ने चिढ़ी आवाज में पूछा—"हैलो ?"

"एँ ? डॉक्टर शर्मा हैं ? नहीं हैं ? अस्पताल में ? देखिए साहब, इस तरह झल्लाइए मत। आप कौन हैं ? ···तुम डॉक्टर साहब के ड्राइवर होकर ऐसी बातें करोगे···हैलो ?"

उस छोर पर चोंगा रख दिया गया। इसके बाद जब अस्पताल का नम्बर लगाया, तो 'टूं-ऊँ-ग, टू-ऊँ-ग···।'

निर्मल के कमरे से बहुत देर तक टेलीफोन डायल करने की आवाज आती रही—क्रिर, क्रिर, क्रिर ! !

फिर मन कड़वा हो गया निर्मल का।

विभा आयी और पास बैठकर गम्भीरतापूर्वक बातें करने लगी—"देखो ! तुम क्या सलाह लेना चाहते हो डॉक्टर से ? यही न कि कम उम्र की कमज़ोर लड़की···।"

"विभा ! तुम फिर छेड़ने आयीं···।" निर्मल कहते-कहते रुक गया। उसने अपनी पत्नी के चेहरे पर सहानुभूति की रेखाएँ देखीं। उसे, विभा का

इस तरह गम्भीर हो जाना अच्छा लगा।

दोपहर के भोजन के बाद विभा रोज एक बीड़ा पान खाती है। पान मुंह में रखकर जब वह बोलने लगती है, तो निर्मल उसके क्रमशः लाल होते हुए ओठों को देखता रहता है। विभा बोली—"तुम सुकुमार को एक चिट्ठी लिख दो और अगले महीने ही जाकर शारदा को लिवा लाओ।"

"तुम ठीक कहती हो। मैं भी यही सोच रहा था।"

विभा अब मुस्कुरायी। निर्मल बोला—"जानवर है। क्या कहा जाये इस सुकुमार को?···"

विभा ने बात पूरी की—"किसको कहा जाये? न बहन शारदा को धैर्य और न बहनोई सुकुमार साहब को सन्तोष···।"

"अब मार खायेगी, विभा।"

विभा हँसती हुए लेट गयी पति के बगल में और अपनी उँगलियों पर जोड़ने और जोड़कर हिसाब निकालने लगी शारदा का 'एसपेक्टिग डेट' यानी 'सम्भावित तिथि' अर्थात् फरवरी में 'होकर' बन्द हुआ है तो नवम्बर के दूसरे सप्ताह में? वह पति को गुदगुदाती बोली—"होनेवाले मामू साहब! एक 'टोकरी' ऊन चाहिए···जाड़े में जन्म लेनेवाले शिशु को गर्म रखने के लिए पसमीना-ऊन···।"

भाई और भाभी ने मिलकर शारदा को बचा लिया। चौथे महीने में ही निर्मल भागलपुर जाकर, लड़-झगड़कर, शारदा को पटना लिवा लाया। पहले हर महीने, बाद में प्रत्येक पखवारे में 'हेल्थ विजिटर' और 'मिडवाइफ' से जांच करवाकर—वे सलाह लेते और तदनुसार परिश्रम, भोजन और दवा की व्यवस्था। इसके बावजूद शारदा की जान संकट में पड़ गयी। नवम्बर के दूसरे सप्ताह में शारदा बारह घण्टे तक अस्पताल में सिर कटी हुई चिड़िया की तरह दर्द से तड़फती-छटपटाती रही। अन्त में सी. एस. करके (सिजेरियन-सेक्शन अर्थात् पेट चीरकर) बच्चा निकाला गया। बच्चा स्वस्थ है—छै पौण्ड का बेबी!

अस्पताल से पन्द्रह दिन के बाद जब डेरे पर आयी शारदा, तो एक दिन चोर की तरह मुंह छिपाता हुआ आकर खड़ा हुआ प्रोफेसर सुकुमार। विभा हँसकर बोली—"आ गये, आ गये! जूलियस सीजर के पिता सुकुमार साहब ···प्रोफेसर ऑफ बोटानी।"

शाम को निर्मल और विभा तस्वीर देखने गये—बहुत दिनों के बाद। पिछले दो महीने से दोनों परेशान होकर दौड़ते-भागते रहे हैं।

राह में विभा बोली—"मेहमान शायद शारदा को लेने आया है।"

निर्मल बोला—"बोले तो मेरे सामने। जूता खायेगा।"

लौटते समय विभा बोली—"कल एक बार डॉक्टर जोजेफ की क्लिनिक में चलोगे?"

"क्यों? अब क्या है?"—निर्मल ने चौंककर पूछा।

विभा बोली—"शारदा कहती थी कि एक बार डॉक्टर जोजेफ ने बुलाया है।"

विभा और निर्मल। विवाह के पाँच वर्ष बाद भी जब विभा को 'कुछ नहीं' हुआ, तो निर्मल ने डॉक्टरों को दिखलाकर सलाह ली थी। एक छोटा-सा ऑपरेशन भी हुआ था। किन्तु अन्ततः दोनों ने मन-ही-मन मान लिया था—कुछ नहीं होगा। विधि के विधान को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। वे प्रसन्न थे, सुखी थे। कहीं कोई रिक्तता नहीं। कोई कमी नहीं महसूस करते थे। किन्तु, उसकी बहन शारदा के आने के बाद से···

दूसरे दिन डॉक्टर जोजेफ की क्लिनिक से लौटकर शारदा अपने पति और भाभी के साथ खिलखिलाकर हँस रही थी—'देखा भाभी! मैंने कहा था न! ठीक हुआ न, मेरी छूत लग गयी न! हा-हा! मैं जानती थी। तुम्हारे लक्षण सभी···"

निर्मल ने पूछा—"क्या बात है शारदा?"

वे सभी चुप हो गये। उस कमरे से विभा की गिड़गिड़ाती आवाज और शारदा की मद्धिम खिलखिलाहट के साथ शारदा के शिशु के किलकने की सम्मिलित आवाज़ आयी। निर्मल ने फिर पूछा—"शारदा! क्या है?"

शारदा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह उठकर पूजाघर में गयी और शंख फूंकने लगी—'धू-ऊ-ऊ! तू-ऊ-ऊ!!'

प्रोफेसर सुकुमार लजाते और मुस्कुराते हुए निर्मल को समझा रहे थे—"भाईजी! वनस्पति-जगत् में भी ऐसा होता है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया को हमारे शास्त्र में 'पोलिनेशन' कहते हैं—पी. ओ. एल. एल. आई. एन. ए. टी. ई. ओ. एन. अर्थात् फर्टिलाइजिंग ए फ्लावर बाइ कनवेइंग···नारियल या पपीता अथवा सुपारी का कोई पेड़ अगर नहीं फलता है तो पास में एक दूसरा पेड़ लगाया जाता है और जब दूसरा पेड़ फूलने-फलने लगता है, तो पहला निष्फला पेड़ भी···।"

निर्मल ने झुँझलाकर कहा—"क्या बक रहे हो, मैं कुछ नहीं समझ रहा।···देखो सुकुमार, मैं कोई बहस, कोई बात नहीं करना चाहता—नहीं सुनना चाहता। शारदा साल-भर यहाँ रहेगी। इस बीच कोई···।"

सुकुमार तुतलाकर कह रहा था—"भाई साहब···मतलब···आप तो बेकार···"

हँसती हुई शारदा ने खिड़की के उस पार से ही अपने भाई और पति और दुनिया-जहान को सुनाने के लहजे में कहा—"मैं जाऊँगी ही नहीं। कोई जबरदस्ती ले जायेगा क्या ?···भाभी को डॉक्टर ने···।"

लगा, शारदा का मुँह किसी ने दबा दिया। उसकी बोली मुंह में ही रह गयी।

सुकुमार ने झाँककर देखा—भाभी अपनी ननद का मुँह हथेली से बन्द करके हँस रही है।

सुकुमार ने कहा—"अच्छी बात है भाभी ! यह 'शुभ संवाद' मुझे ही सुनाने का अवसर आपने दे दिया। बहुत धन्यवाद ! भाई जी, बात यह है कि भाभी···भाभी को डॉक्टर जोजेफ ने जाँच कर 'पक्की' रिपोर्ट दे दी है—मतलब, भाभी ने 'कंसीव'···अर्थात्—वही जो मैं कह रहा था न—पोलिनेशन···"

पुरानी कहानी : नया पाठ

बंगाल की खाड़ी में डिप्रेशन—तूफ़ान—उठा !

हिमालय की किसी चोटी का बर्फ़ पिघला और तराई के घनघोर जंगलों के ऊपर काले-काले बादल मँडराने लगे। दिशाएँ साँस रोके मौन-स्तब्ध !

कारी-कोसी के कछार पर चरते हुए पशु—गाय, बैल-भैंस—नदी में पानी पीते समय कुछ सूँघकर भड़के, आतंकित हुए। एक बूढ़ी गाय पूँछ उठाकर आर्तनाद करती हुई भागी। बूढ़े चरवाहे ने नदी के जल को ग़ौर से देखा। चुल्लू में लिया—कनकन ठण्डा ! सूँघा—सचमुच, गेरुआ पानी !

गेरुआ पानी अर्थात् पहाड़ का पानी—बाढ़ का पानी ?

जवान चरवाहों ने उसकी बात को हँसी में उड़ा दिया। किन्तु जानवरों की देह की कँपकँपी बढ़ती गयी। वे झुण्ड बाँधकर कगार पर खड़े नदी की ओर देखते और भड़कते। फिर धरती पर मुँह नहीं रोपा किसी बछड़े ने भी।

कारी-कोसी की शाखा-नदियाँ—पनार, बकरा, लोहन्द्रा और महानदी के दोनों कछारों पर भदई धान, मकई और पटसन के खेतों पर मोटी कूँची

से पुता हुआ गहरा-हरा रंग ! गाँवों की अमराइयों और आँगनों में 'मधुश्रावणी' के मोहक गीतों की गूँज ! हवा में नववधुओं की सूखती-लहराती लाल, गुलाबी, पीली चुनरियों की मादक-गन्ध ! मड़ैया में लेटे, मकई के दुधिया बालों की रखवाली करनेवाले अधेड़ किसान के मन में रह-रहकर एक मीठा पाप जगता है—पाट के खेतों में साग खोंटनेवाली काली-काली जवान मुसहरनियों के झुण्ड को देखकर। वह बिरहा अलापने लगता है, ऊँचे सुर में—'अरे साँवरी सुरतिया पे चमके टिकुलिया कि छतिया पे जोड़ी अनार गे—छौंड़ी छतिया पे जोड़ी अ-ना-आ-आ-आ-आ-र !'

"मार मुँहझौंसे बुढ़वा-बानर को। बुढ़ौती में अनार का सौख देखो।"

लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसीं। हँसते-हँसते एक-दूसरे पर गिर पड़ीं। ···छौंड़ी माने तू बोली हमार गे—छौंड़ी माने तू बतिया ह-मा-आ-आ-आ-र !

···अनार नहीं, अन्हार ! अर्थात्—अन्धकार !

पाट के खेतों सहित काली-काली जवान मुसहरनी छोकरियाँ आकाश में उड़ गयीं ? दल बाँधकर मँडरा रही हैं ? हँसती हैं तो बिजली चमक उठती है।···रखवाला सूरज दो घड़ी पहले ही डूब गया ! अं-ध-का-आ-आ-आ-आ-र !

साँझ को बूँदाबाँदी शुरू हुई। मन का हुलास, गले से बरसाती गीत 'बारहमासा' की लय में फूटकर निकल पड़ा—'एहि प्रीति कारन सेतु बाँधल सिया उदेस सिर-राम हे-ए-ए-ए-ए-ए !'

हे-ए-ए-ए-हो-ओ-ओ-ओ !

···हथिया (हस्ता) नक्षत्र की आगमनी गाती हुई पुरवैया हवा, बाँस के बन में नाचने लगी। उसके साथ सैकड़ों प्रेतनियाँ, डाल-डाल में झूले डालकर झूल पड़ीं।···विकट किलकारियाँ !

झमाझम वर्षा में दूर से एक करुण अस्फुट-गुहार आकर गाँवों को सिहरा गया—हे-ए-ए-ए-हो-ओ-ओ-ओ !

···कोई औरत राह भूलकर अँधेरे में पुकार रही है ?

बाँस-बन की प्रेतनियाँ, करोड़ों जुगनुओं से जड़ी चुनरियाँ उड़ाती दौड़ीं, खेतों की ओर।···डरे हुए बच्चों को माताओं ने अपनी छातियों से चिपका लिया। दूर नदी के किनारे खेतों में खड़ी कोई उसी तरह पुकारती-गुहारती रही—हे-ए-ए-ए-हो-ओ-ओ !

···खेत की लछमी आधी रात में रो रही है ?

···सर्वनाश !

गुहार की पुकार क्रमशः क्षीण होती गयी और एक क्रुद्ध गुर्राहट की

ख़ौफ़नाक आवाज़ उभरी—'गों-ओं-ओं-ओं !'

···हवाई जहाज़ ?

गुर्राहट क्रमशः निकट आ रही है। सबसे उत्तरवाले गाँव के सैकड़ों लोग एकसाथ चिल्ला उठे। भयातुर प्राणियों के कण्ठों से चीख़ें निकलीं—"बा-आ-आ-ढ़ ! अरे बाप !"

"बाढ़ ?"

"बकरा नदी का पानी पूरब-पच्छिम दोनों कछार पर 'छहछह' कर रहा है। मेरे खेत की मड़ैया के पास कमर-भर पानी है।"

"दुहाय कोसका महरानी !"

इस इलाक़े के लोग हर छोटी-बड़ी नदी को कोसी ही कहते हैं।···कोसी-बराज बनने के बाद भी बाढ़ ?···कोसका मैया से भला आदमी जीत सकेंगे ?···लो, और बांधो कोसी को !

"अब क्या होगा ?"

कड़कड़ाकर खेतों में बिजली गिरी। गांव के लोगों की आँखों की रोशनी मन्द हो गयी।···एक तरल अन्धकार में दुनिया डूब रही है।···प्रलय, प्रलय !

निरुपाय, असहाय लोगों ने झांझ-मृदंग बजाकर कोसी-मैया का बन्दना-गीत शुरू किया !

जवानों ने टाँगी-कुदाली से बाँस की बल्लियों, लकड़ियों को काटकर मचान बाँधना शुरू किया।

मृदंग-झाँझ के ताल पर फटे कण्ठों के भयोत्पादक सुर···"कि आहे-मैया-कोसका-आ-आ-आ-हैय-मैया-तोहरो-चरनवां-गे मैया अड़हुल-फूलवा कि-हैय-मैया-हमहु-चढ़ायब-हैय···!"

···धिन-तक-धिन्ना, धिन-तक-धिन्ना !

···छम्मक-कट-छम, छम्मक-कट-छम !

उतराही-गाँव का एकमात्र 'पढ़ुआ-पागल' हँसता हुआ इसी ताल पर जन-कवि नागार्जुन की कविता की आवृत्ति कर रहा है—"ता-ता थैया, ता-ता थैया, नाचो-नाचो कोसी मैया···!"

और सचमुच इसी ताल पर नाचती हुई कोसी-मैया आयी और देखते-ही-देखते खेत-खलिहान-गाँव-घर-पेड़—सभी इसी ताल पर नाचने लगे—ता-ता थैया, ता-ता थैया···धिन-तक-धिन्ना, छम्मक-कट-छम !

—मुँह बाये, विशाल मगरमच्छ की पीठ पर सवार दस-भुजा कोसी नाचती, किलकती, अट्टहास करती आगे बढ़ रही है।

अब मृदंग-झाँझ नहीं, गीत नहीं—सिर्फ़ हाहाकार !

किन्तु नौजवान लोग जीवट के साथ जुटे हुए हैं; मचान बाँध रहे हैं; केले के पौधों को काटकर 'बेड़ा' बना रहे हैं।···जब तक साँस, तब तक आस !

"ओसरे पर पानी आ गया !"

"बछरू बहा जा रहा है। धरो-पकड़ो-पकड़ो !"

"किसका घर गिरा ?"

"मड़ैया में कमर-भर पानी !"

"ताड़ के पेड़ पर कौन चढ़ रहा है ?"

"घर में पानी घुस गया। अरे बाप !"

"छप्पर पर चढ़ जा !"

"माय गे-ए-ए-ए—बाबा हो-ओ-ओ-दुहा-ई-ई-संभल के-ले ले गिरा-गिरा—छप्पर पर चढ़ जा—ए सुगनी-रे रमललवा-आ-आ दीदी ई-ई-हाय-हाय—माय गे—बाबा हो-ओ-ओ—हे इस्सर महादेव—ले ले गया-गया—डूबा-डूबा—आँगन में छाती-भर पानी—यह छप्पर कमज़ोर है, यहाँ नहीं—यहाँ जगह नहीं—हे हे ले ले गिरा—भैंस का बच्चा बहा रे-ए-ए—ए डोमन-ए डोमन-साँप-साँप—जै गौरा पारबती—रस्सी कहाँ है—हँसिया दे—बाप रे बाप—ता-ता थैया, ता-ता थैया, नाचो-नाचो कोसी-मैया—छम्मक-कट-छम···!"

भोर के मटमैले प्रकाश में ताड़ की फुनगी पर बैठे हुए वृद्ध गिद्ध ने देखा—दूर, बहुत दूर तक गेरुआ पानी-पानी-पानी ! बीच-बीच में टापुओं जैसे गांव-घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग। वह वहाँ एक भैंस की लाश ! डूबे हुए पाट और मकई के पौधों की फुनगियों के उस पार···!

राजगिद्ध पाँखें तोलता है—उड़ान भरता है ! हहास !

जंगली बतकों की टोली अपने घोंसलों और अण्डों को खोज रही है। टिटही असगुन और अमंगल-भरी बोल रही है।

बादल फिर घिर रहे हैं। हवा फिर तेज़ हुई।···दुहाई !

इस क्षेत्र के पराजित उम्मीदवार, पुराने जन-सेवकजी का सपना सच हुआ। कोसका मैया ने उन्हें फिर जनसेवा का 'औसर' दिया है।···जै हो, जै हो ! इस बार भगवान ने चाहा तो वे विरोधी को पछाड़कर दम लेंगे। वे कस्बा रामनगर के एक व्यापारी की गद्दी से टेलीफ़ोन करके जिला मैजिस्ट्रेट तथा राज्य के मन्त्रियों से योगसूत्र स्थापित कर रहे हैं—"हैलो ! हैलो···!"

राजधानी के प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक-पत्र के स्थानीय निज संवाददाता को बहुत दिन के बाद ऐसा महत्त्वपूर्ण समाचार हाथ लगा है—क्या ? प्रेस-

टेलीग्राम का फ़ार्म नहीं है ?···ट्रा-ट्रा-टक्का-टक्का-ट्रा-ट्रा···!

"हैलो, हैलो ! हैलो पुरनियाँ, हैलो पटना, हैलो कटिहार !"

···ट्रा-ट्रा-टक्का-टक्का···!

"हैलो, मैं जनसेवक शर्मा बोल रहा हूँ। जी ? जी करीब पचास गाँव एकदम जलमग्न—डूब गये। नहीं हुजूर, नाव नहीं, गाँव। गाँव माने विलेज जी ? कुछ सुनायी नहीं पड़ रहा जी ! नाव एक भी नहीं है। हुजूर डी. एम. को ताकीद किया जाय ज़रा। जी ? इस इलाके का एम. एल. ए. ? जी, वह तो विरोधी पार्टी का है। जी···जी ?···हैलो-हैलो-हैलो !"

जनसेवकजी ने संवाददाता को पोस्ट ऑफ़िस के काउण्टर पर पकड़ा और उसे चाय की दूकान पर अपना बयान लिखाने के लिए ले गये। किन्तु चाय की दूकान पर सुविधा नहीं हुई, तो उसे अपने डेरे पर ले गये। लिखो —"स्मरण रहे कि ऐसा बाढ़···बाढ़ स्त्रीलिंग है ? तब, ऐसी बाढ़ ही लिखो। हाँ, तो स्मरण रहे कि ऐसी बाढ़ इसके पहले कभी नहीं आयी···।"

"किन्तु दस साल पहले तो···?"

"अजी, दस साल पहले की बात कौन याद रखता है ! तो लिखो कि सूचना मिलते ही आधी रात को मैं बाढ़ग्रस्त इलाके···। और सुनो, आज ही यह 'स्टेटमेण्ट' चला जाये। वक्तव्य सबसे पहले मेरा छपना चाहिए।"

संवाददाता अपनी पत्रकारोचित बुद्धि से काम लेता है—"लेकिन एम. एल. ए. साहब ने तो पहले ही बयान दे दिया है—'फ़र्स्ट प्रेस ऑफ़ इण्डिया' को—सीधे टेलीफ़ोन से।"

जनसेवक शर्मा का चेहरा उतर गया।···इतने दिन के बाद भगवान ने जनसेवा का औसर दिया और वक्तव्य चला गया पहले विरोधी का ? दुश्मन का ? चीनी आक्रमण के समय भी भाषण देने और फ़ण्ड वसूलने में वह पीछे रह गये। और, इस बार भी ?

"सुनो। मैंने कितने बाढ़ग्रस्त गाँवों के बारे में लिखाया था ? पचास ? उसको डेढ़ सौ कर दो।···ज्यादा गाँव बाढ़ग्रस्त होगा तो रिलीफ़ भी ज्यादा-ज्यादा मिलेगा, इस इलाके को। अपने क्षेत्र की भलाई के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। और झूठ क्यों ? भगवान ने चाहा तो कल तक दो सौ गाँव जलमग्न हो जा सकते हैं !"

संवाददाता को अपना वक्तव्य देने के बाद उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं की विशेष 'आवश्यक और अरजेण्ट' बैठक बुलायी। वक्तव्य में उन्होंने जिस बात की चर्चा नहीं की, उसी पर विशेष प्रकाश डालते हुए सुझाया —"यह जो बरदाहा-बाँध बना है पिछले साल, इसके कारण इस कस्बा रामपुर पर भी इस बार ख़तरा है। पानी को निकास नहीं मिला तो कल सुबह तक ही

—हो सकता है —पानी यहाँ के गाड़ीवान टोला तक ठेल दे !"

गाड़ीवान टोले के कर्मठ कार्यकर्ताओं ने एक-दूसरे की ओर देखा। आँखों-ही-आँखों में गुप्त कारंवाई करने का प्रस्ताव पास हो गया।

दूसरे दिन सुबह को संवाददाता ने नया संवाद भेजा—"आज रात बरदाहा-बाँध टूट जाने के कारण क़रीब डेढ़ सौ गाँव फिर डूबे···।" टक्का टक्का-ट्रा-ट्रा !! जनसेवकजी 'ट्रंक' से पुकारने लगे—"हैलो-हैलो-हैलो-पटना, हैलो पटना···!!"

कस्बा रामपुर के व्यापारियों और बड़े महाजनों ने समझ लिया—'सुभ-लाभ' का ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता। चीनी आक्रमण के समय वे हाथ मलकर रह गये।···यह अकाल का हल्ला चल ही रहा था कि भगवान ने बाढ़ भेज दिया। दरवाज़े के पास तक आयी हुई गंगा में कौन नहीं हाथ धोयेगा भला ! उनके गोदाम ख़ाली हो गये, रातों-रात बही-खाते दुरुस्त ! अकाल-पीड़ितों के लिए फ़ण्ड में पैसे देने की सरकारी-ग़ैर-सरकारी अपील पर, उन्होंने दिल खोलकर पैसे दिये।···अनाज ? अनाज कहाँ ?

सरकारी कर्मचारियों ने उनके ख़ाली गोदामों पर सरकारी ताले जड़ दिये।

"भाइयो ! भाइयो !! आज शाम को। स्थानीय टाउन हॉल यानी 'ठेठरहौल' में। कस्बा रामपुर की जनता की एक विराट-सभा होगी। इस सभा में बाढ़-पीड़ित-सहायता-कमिटी का गठन होगा। भाइयो ! भाइयो···!"

"प्यारे भाइयो ! द अनसारी टूरिंग सिनेमा के रुपहले परदे पर आज रात एक महान पारिवारिक खेल···प्यारे भाइयो···आज रात !"

"मेहरबान, आँख नहीं तो कुछ नहीं। जिन भाइयों की आँखों में लाली हो—आँख से पानी गिरता हो—मोतियाबिन्द और रतौंधी हो—एक बार हमारी कम्पनी का मशहूर और मारूफ़ अंजन इस्तेमाल करके देखें ···।"

···मैं का करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया !

···छप गया, छप गया। इस इलाके का ताज़ा समाचार। दो सौ गाँव डूब गये।

···आ गया ! आ गया ! सस्ता बम्बैया चादर !

···आ गयी ! आ गयी ! रिलीफ की गाड़ी आ गयी !

···आ गयी ! आ रही हैं ! तीन दर्जन नावें !

···सिंचाई मन्त्री जी आ रहे हैं !

···भिक्षा दो भाई भिक्षा दो—चावल-कपड़ा-पैसा दो !

···इन्कलाब जिन्दाबाद !

कस्बा रामपुर के दोनों स्कूल, मिडिल और उच्च-माध्यमिक विद्यालय के लड़के जूलूस निकालकर, गीत गाकर फटे-पुराने कपड़े बटोरते रहे। शाम होते-होते वे दो दलों में बँट गये। बात गाली-गलौज से शुरू होकर 'लाठी-लठौवल' और छुरेबाज़ी तक बढ़ गयी।···दिन-भर जुलूस में गला फाड़कर नारा लगाया—गाना गाया मिडिल स्कूल के लड़कों ने और लीडर में नाम लिखा जाये हाइयर सेकेण्डरी के लड़के का ? मारो सालों को !

किन्तु रिलीफ़-कमिटी के सभापति श्री जनसेवक शर्माजी निर्विरोध निर्वाचित हुए। एम.एल.ए. साहब को लोगों ने मिलकर खूब फींचा। "वोट माँगने के समय तो खूब 'लाम काफ' बघार रहे थे। और अभी सरकारी रिलीफ़-बोट की बात तो दूर, एक फूटी नाव तक नहीं जुटा सकते ?···जवाब दीजिये, क्यों आयी यह बाढ़ ?···आपकी बात नहीं सुनी जाती तो दे दीजिये इस्तीफ़ा !"

एम. एल. ए. साहब के सभी 'मिलीटेण्ट-वर्कर' अनुपस्थित थे। नहीं तो बात यहाँ भी रोड़ेबाजी से शुरू होकर···!

सभी राजनैतिक पार्टियों के प्रमुख नेता अपने-अपने कार्यकर्ताओं के जत्थे के साथ कस्बा रामपुर पहुँच रहे हैं। उनके अलग-अलग कैम्प गड़ रहे हैं।

सरकारी डॉक्टरों और नर्सों की टोली अभी-अभी पहुँची है। डाकबँगले के सभी कमरों में आफ़िसरों के डेरे हैं।···अफ़सरों की 'कोडिनेशन मीटिंग' बैठी है।

सभी राजनैतिक पार्टी के नेताओं ने अपने प्रतिनिधि का नाम दिया है—विजिलेंस-कमिटी की सदस्यता के लिए। प्रायः सभी पार्टियों में दो गुट हैं—आफ़िशियल ग्रुप, डिसिडेण्ट···। हर कैम्प में एक दबा हुआ असन्तोष सुलग रहा है।

···कल मुख्यमन्त्रीजी 'आसमानी-दौरा' करेंगे।

···केन्द्रीय खाद्यमन्त्री भी उड़कर आ रहे हैं।

···नदी-घाटी-योजना के मन्त्रीजी ने बयान दिया है।

···और रिलीफ़ भेजा जा रहा है। चावल-आटा-तेल-कपड़ा-किरासन तेल-माचिस-साबूदाना-चीनी से भरे दस सरकारी ट्रक रवाना हो चुके हैं।

···कल सारी रात विजिलेंस कमिटी की बैठक चलती रही।

"भाइयो ! आज शाम को। म्युनिसिपल मैदान में। आम सभा होगी। जिसमें सरकार की वर्तमान 'रिलीफ़ नीति' के खिलाफ घोर असन्तोष प्रकट किया जायगा। रिलीफ़ कमिटी का मनमाना गठन करके···।"

"भाइयो ! कल साढ़े दस बजे दिन को। कामरेड चौबे। स्थानीय रिलीफ़-आफ़िसर के सामने। अनशन करने के लिए···!"

···जा जा जा रे बेइमान तोरा एको न धरम। एको न धरम हाय कछु ना शरम। जा जा जा रे बेइमान तोरा···!

"भाइयो !"

दो दिन से छप्परों, पेड़ों और टीलों पर बैठे पानी से घिरे भूखे-प्यासे और असहाय लोगों ने देखा—नावें आ रही हैं।

अगली नाव पर झण्डा है। कांग्रेसी झण्डा !

पिछली नाव पर भी। मगर दूसरे रंग का।

···जै हो ! महात्मा गाँधी की जै !

···ए ए ! ! इसमें महात्मा गाँधी की जय की क्या बात है ?

···हड़बड़ाओ मत। नहीं तो डाली टूट जायेगी।

···तीसरी नाव ! अरे-रे ! वह नाव नहीं। मवेशी की लाश है और उस पर दो गिद्ध बैठे हैं।

···हवाई जहाज़ ! हवाई जहाज़ !

नावें करीब आती गयीं। अगली नाव पर जनसेवकजी स्वयं सवार हैं। उनकी नाव पर 'माइक' फ़िट है। वे दूर से ही अपनी भूमिका बाँध रहे हैं—"भाइयो, हालाँकि पिछले चुनाव में आप लोगों ने मुझे वोट नहीं दिया। फिर भी आप लोगों के संकट की सूचना पाते ही मैंने मुख्यमन्त्री, सिंचाई-मन्त्री, खाद्यमन्त्री···!"

पिछली नाव पर विरोधी दल के कार्यकर्ता थे। उन्होंने एक स्वर से विरोध किया—"यह अन्याय है। आप सरकारी नाव और सरकारी सहायता का इस्तेमाल ग़लत तरीक़े से पार्टी के प्रचार में···।"

जनसेवकजी रिलीफ़-कमिटी के सभापति हैं। उन्हें विरोध की परवाह नहीं। वे जारी रखते हैं—"भाइयो, आप लोग हमारे कार्यकर्ताओं को अपनी संख्या नाम-ब-नाम लिखा दें। आप लोग एक ही साथ हड़बड़ाकर नाव पर मत चढ़ें। भाइयो, स्टाक अभी थोड़ा है। नाव की भी कमी है। इसलिए जितना भी है आपस में सलाह करके बाँट-बटवारा···!"

रिलीफ़-कमिटी के सभापति की नाव जलमग्न क्षेत्र में भाषण बोती हुई चली गयी। साथवाली नाव पर बैठे लोग लगातार विरोध करते हुए साथ चले। दोनों नावों से कुछ कार्यकर्ता उतरे—बही-खाता लेकर।

"बड़ी नाव आ रही है !"

"भैया, खाली नाव ही आ रही है या और भी कुछ ? बच्चे भूख से

बेहोश हैं। मेरी बेटी लबेजान है।"

दो दर्जन नावें शाम तक लोगों को बटोरती रहीं। रात को विजिलेंस-कमिटी की बैठक में रिलीफ़-आफ़िसर ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "नावों पर किसी पार्टी का झण्डा नहीं लगेगा! ···बगैर अँगूठा-टीप लिये या बिना दस्तख़त कराये किसी को कोई चीज नहीं दी जाये।···हमें दुख है कि हम बीड़ी नहीं सप्लाई कर सकते।···रिलीफ़ बाँटते समय किसी पार्टी का प्रचार या निन्दा करना ग़ैरवाजिब है। ऐसा करनेवालों को कमिटी का किसी प्रकार का काम नहीं सौंपा जायेगा।"

डॉक्टरों और नर्सों को अभी कोई काम नहीं। वे 'इनडोर' और 'आउट-डोर' खेलों में मस्त हैं—गेम बॉल! ···टू स्पेड! ···की मिस बनर्जी···को होलो? ···नो ट्रम्प!

रेलवे लाइन के ऊँचे बाँध पर—कस्बा रामपुर के हाट पर पेड़ों के नीचे—स्कूलों मे बाढ़-पीड़ितों के रहने की व्यवस्था की गयी है। जिन गाँवों में पानी नहीं घुसा है, मगर पानी से घिरे हैं, ऐसे गाँवों में भी लोगों के रहने की व्यवस्था की गयी है। उनके लिए रोज़ राशन लेकर नावें जाती हैं। डॉक्टरों और नर्सों के कई जत्थे गाँवों में सेण्टर चलाने के लिए भेजे गये हैं।

पानी धीरे-धीरे घट रहा है।

मुसहर तथा बहरदारों का दम, कैम्प के घेरे में कई दिन से फूल रहा था। इन घुटते हुए लोगों ने पानी घटने की खबर सुनते ही डेरा-डण्डा तोड़ दिया। वे पानी के जानवर हैं। पानी-कीचड़ में वे महीनों रह सकते हैं··· टीप देते-देते अँगूठे की चमड़ी भी काली हो गयी।···भीख माँगकर खाना अच्छा, मगर रिलीफ़ या हलवा-पूड़ी नहीं छूना। छिः छिः!! —वह 'कुर्र-अक्खा' भोलटियर मेरी सुगनी को फुसला रहा था, जानते हो? ···सब चोरों का ठठ्ठ!

"भाइयो, कैम्प से जाने के पहले। अपने इंचार्ज को। अवश्य सूचित करें। जिन गाँवों से पानी हट गया है वहाँ के लोग अब जा सकते हैं। उनके पुनर्वास के लिए रिलीफ़-कमिटी की ओर से बाँस-खड़-सूतली तथा और ज़रूरी सामान···!"

"भाइयो, आपको मालूम होना चाहिए। कि आपकी सहायता के लिए। आये हुए सामान के वितरण में। घोर धाँधली हो रही है। आप खुद अपनी आवाज बुलन्द करके। मौज़ूदा कमिटी को···!"

"····भाइयो। भाइयो! सुनिए। दोस्तो!!"

भाइयो-भाइयो पुकारते हुए दोनों घोषणा करनेवालों ने एक-दूसरे को

झूठा और बेईमान कहना शुरू किया। फिर मारपीट शुरू हुई। पुलिस ने शान्ति स्थापित करने के लिए लाठी-चार्ज किया। कई बाढ़-पीड़ित रात-भर हिरासत में रहे।

···राजधानी के प्रमुख अंग्रेजी पत्र ने परदा-फ़ाश करते हुए लिखा—'छोटी-छोटी नदियों, ख़ासकर कोसी की पुरानी धाराओं में, छोटे-बड़े बाँध बाँधने में पी.डब्ल्यू.डी. के इंजीनियरों ने अदूरदर्शिता से काम लिया है। यही कारण है कि जिन क्षेत्रों में कभी बाढ़ नहीं आयी, वे जलमग्न हैं इस बार। सरकार के अकर्मण्य कर्मचारियों···;'

···दूसरे दैनिक ने इस बाढ़ की ज़िम्मेदारी पड़ोसी राज्य के अधि-कारियों के सिर थोपते हुए लिखा—'पड़ोसी राज्य ने हमारे राज्य की सीमा से सटे हुए क्षेत्र में बराज बाँधकर सारे उत्तर-पूर्वी बिहार की तमाम छोटी नदियों का निकास अवरुद्ध कर दिया। बराज बनाने के पहले यदि हमारे राज्य-अधिकारियों से सलाह-परामर्श किया जाता तो ऐसी बाढ़ नहीं आती।'

स्थानीय, अर्थात जिला से निकलनेवाली साप्ताहिक पत्रिका ने इस बाढ़ को 'मैनमेड' बाढ़ क़रार देते हुए प्रमाणित किया—'पड़ोसी राज्य नहीं, पड़ोसी राष्ट्र के कर्णधारों ने ही हमें डुबाया है।'

बरदाहा-बाँध टूटने की ज़िम्मेदारी चूहों पर पड़ी। चूहों ने बाँध में असंख्य 'माँद' खोदकर जर्जर कर दिया था—एक ही साल में।

···पढ़िए, पढ़िए···ताजा समाचार! सारे राज्य में हाहाकार! राज्य की मौजूदा सरकार के खिलाफ़ अविश्वास के प्रस्ताव की तैयारी! मुख्य-मन्त्री के निवास पर अनशन!

पचास टिन किरासन, दस बोरा आटा और चावल के साथ रिलीफ़ की नाव पनार नदी की बीच धारा में डूब गयी! ···लापता हो गयी।

जनसेवकजी के विरोधियों ने मुक़दमा दायर किया है। करें। जनसेवक-जी का काम बन चुका है। सारे इलाक़े में उनका जयजयकार हो रहा है। ···चुनाव में हारने और चीनी आक्रमण के समय पिछड़ जाने की सारी ग्लानि दूर हो गयी है। उन्होंने सूद-सहित वसूल लिया है।···भगवान ज़रूर है, कहीं-न-कहीं।

···भाइयो!

···ओ मेरे वतन के लोगो! ज़रा आँख में भर लो पानी···!

आकाश में गिद्धों की टोली भाँवरी ले रही है। सैकड़ों काले-काले पंख—मँडराते हुए बादलों जैसे।

धरती पर मरे हुए पशुओं की लाशें—कंकाल ! हरी-भरी फ़सलों के सड़ते हुए पौधे !

···दुर्गन्ध-दुर्गन्ध-गन्ध !

···कीचड़-केंचुए-कीड़े—धरती की सड़ी हुई लाश !

सर्वहारा लोगों की टोली, सिर झुकाये बचे-खुचे पशुओं को हाँकते, बाल-बच्चों, मुर्गे-मुर्गियों, बकरे-बकरियों को गाड़ियों, बहँगियों और पीठ पर लादकर अपने-अपने गांव की ओर जा रही है, जहाँ न उनकी मड़ैया साबित है और न खेतों में एक चुटकी फ़सल। किन्तु उनके पैर तेज़ी से बढ़ रहे हैं। तीस-बत्तीस दिन के रौरववास के बाद उनके दिलों में अपने बेघर के गाँव और कीचड़ से भरे खेतों के लिए प्यार की बाढ़ आ गयी है।···कीचड़ पर उनके पैरों के छाप दूर-दूर तक अंकित हो रहे हैं।

गाँव फिर से बस रहे हैं।

सरकारी रिलीफ़, कर्ज़ और सहायता के बोझ से दबी हुई आत्माओं में फिर देवता आकर बसने लगे। तीस-बत्तीस दिन तक अपनी-अपनी जान के लिए वे आपस में लड़ते रहे, रिलीफ़के कार्यकर्ताओं की खुशामद करते रहे। स्वार्थ-सिद्धि के लिए उन्होंने एक-दूसरे की गरदन पर हाथ रखे, दूसरे का हिस्सा हड़पा, चोरी की, झगड़ा किया।···सभी के दिल में शैतान का डेरा था।

आसिन का सूरज रोज़ धरती को जगाता है। सूखते हुए कीचड़ों पर दूब के अँखुए हरे हुए।

जंगली बतकों की पाँती 'पैंक-पैंक' करती हुई चक्कर मार रही है। चील, काग, गिद्ध—सभी प्यारे लगते हैं। गड्ढों में 'कोका' के फूल हैं या बगुले ?···हरसिंगार की डाली फूलों से लद गयी। हवा में आगमनी का सुर—माँ आ रही है ! भिखारिनी—अन्नपूर्णा माँ !

मिट्टी-कीचड़ की प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र फूँककर मिट्टी की सन्तान ने पुकारा—माँ-आँ-आँ ! हमें क्षमा करो···!

पूजा के ढोल बजने लगे, सभी ओर।

कारी कोसी की निर्मल धारा में अष्टमी का चाँद हँसा। शरणार्थी बंगाली मल्लाहों के गीत की एक कड़ी रजनीगन्धा के तुनुक-कोमल डण्ठलों की तरह टूट-टूटकर बिखर रही है—ओ रे भा-य य य !! तोमारि लागिया-बधुआ-आ-आ-काँदे हाय हाय—उगो पिरित करिया बधुआ मने परताय···!

इलाक़े का 'पढ़वा पागल' आजकल 'निराला' की एक ही पंक्ति को बार-बार दुहराता है—'मिट्टी का ढेला शकरपाला हुआ।'

आत्म-साक्षी

भात की हाँड़ी से उबले हुए आलुओं को निकालकर छील रहा था गनपत, कि बाहर किसी ने खखासकर अपने आने की सूचना दी—सूचना नहीं, चेतावनी। उसने पूछा, "कौन है ?"

"कौन हैं अन्दर ? गनपतजी ?···इधर ऑफ़िस में अँधेरा क्यों है ? लालटेन दे जाइए इधर।"

गनपत को अचरज हुआ। कॉमरेड बलरामजी कब आये पटना से ? और कॉमरेड लोग अभी रैली से लौटे नहीं। बलरामजी कब और कैसे लौट आये ?

उसने आलू की कटोरी को थाली से ढँक दिया, और लालटेन लेकर बाहर आया।

"लाल सलाम, साथी ! कहिए रैली का कुशल-समाचार !"

बलराम का लटका हुआ मुँह देखकर गनपत का हुलसा हुआ मन अचानक बैठ गया। बलराम की विकृत मुख-मुद्रा को देखकर उसका जी धड़का।···लक्षण अच्छे नहीं।

"ऑफ़िस खोलिए ज़रा।"

गनपत ने मन-ही-मन कहा, 'ज़रा क्यों ! पूरा ही खोल देता हूँ। मुँह-नाक इस तरह सिकोड़कर क्यों बनियाते हैं ?···पटना एक बार पहुँचते ही साथियों को न जाने क्या हो जाता है !'

उसने ऑफ़िस नामक झोंपड़ी का दरवाज़ा खोल दिया। कई दिन से बन्द कमरे से एक गुमसी हुई गंध निकली। लालटेन की रोशनी दो-तीन बार भुकभुकाकर काँपने लगी।

बलरामजी ने अपने मुँह को और भी बिगाड़कर कहा, "लालटेन में तेल है या पानी ? एक चिमनी क्यों नहीं खरीद लेते ?"

गनपत को भात की याद आयी। ठंडा भात वह नहीं खा सकता। खाते ही 'बाय' उखड़ जाता है। उसने रसोईघर की ढिबरी जलाते हुए कहा, "तेल और चिमनी की बात पूछते हैं कॉमरेड, तो पहले हमको भोजन कर लेने दीजिए, तब जवाब देंगे।···आप चाह-चू पीजिए तो बोलिए, पानी चढ़ा दें। चूल्हे में आग है। पुड़िया में थोड़ी पत्ती और कागजी नींबू भी है।"

चूल्हे पर अलमूनियम की काली देगची चढ़ाकर गनपत ने जलावन

को धधकाया, और आलू निकालकर छीलने लगा।···आलू का भुर्ता और गरम-गरम भात! गनपत के लिए इससे बढ़कर लोभनीय पदार्थ इस संसार में और कुछ नहीं। कुसमी कहती है कभी-कभी, 'भतखौका मरद!' और गनपत हँसकर जवाब देता है, 'भतारखौकी!' बलरामजी ने खखासकर चेतावनी दी थी उस समय। यदि अन्दर कुसमी होती उस समय, तो गनपत का चेहरा लाल हो जाता, और वह जोर-जोर से बेवजह कुसमी को डाँटने लगता—'काम करने का मन नहीं है तो छोड़ दो। जैसे तुम्हारा बेटा कामचोर, वैसी ही तुम।' कुसमी हँसती हुई, घूंघट के नीचे से जवाब देती···।

भुर्ता बनाते समय गनपत को आज के अखबार में पढ़ी हुई बात याद आयी—'हमारे जवानों ने दुश्मनों के टैंकों का भुर्ता बना डाला···।'

तेल, प्याज, मिर्च और धनिया की कतरी हुई पत्ती को भुर्ता में मिलाकर उसने गोला तैयार किया। पीतल की चमचमाती हुई थाली में भात डालते समय भाप की महक उसके तन-मन में समा जाती है। भात की यह ललचानेवाली गन्ध उसे सबसे पहले सन् तीस में लगी थी—स्वयंसेवक शिविर में। तब से आज तक न जाने कितने आश्रम, शिविर, रैली, सम्मेलन और जेलों के सामूहिक भोजनालयों में गनपत ने पत्तल जूठा किया है, मगर ऐसी गन्ध क्या हर जगह और हर रोज मिलती है?

तृप्तिपूर्वक पेट-भर भोजन कर लेने के बाद गनपत ने जूठी थाली और जूठे चौके को माँज-धोकर पवित्र किया। सुबह कुसमी आकर चिकनी मिट्टी से लीप-पोत देगी। उसने पुकारकर कहा, "शोभित लाल! भात ले जा रे!"

काठ के बक्स से प्याली निकालकर बलरामजी के लिए नींबूवाली चाय तैयार की गनपत ने। फिर भुने हुए सौंफ की बुकनी मुंह में डालकर, हाथ में चाय की प्याली लेकर वह ऑफ़िस घर में आया। सौंफ़ की बुकनी के अलावा किसी क़िस्म की लत नहीं है गनपत को। न बीड़ी-सिगरेट पीता है, न पान-तम्बाकू खाता है।

चाय की पहली चुस्की लेते ही बलरामजी का बिगड़ा हुआ मुखड़ा सुधर गया। चमड़े के थैले में काग़ज़-पत्तर डालते हुए बलरामजी ने पूछा, "आप खुद क्यों खाना बनाते हैं? शोभित की माँ क्या करती है?"

गनपत कट-भरी बोली का मतलब समझता है। अर्थात तीन रुपये महीना शोभित को और पाँच रुपये माहवार उसकी माँ कुसमी को किस काम के लिए दिये जाते हैं?

बलरामजी ने दूसरा सवाल किया, "तब?···इधर कुछ चन्दा-फन्दा

वसूल हुआ है, या···?"

गनपत ने डकार लेते हुए कहा, "वही तो कह रहा था, कॉमरेड···!"

बलराम ने टोक दिया, "देखिए, आप इस तरह बात-बात में कॉमरेड जोड़कर क्यों बोलते हैं?"

"कॉमरेड को कॉमरेड न कहें तो क्या कहें? और यह कुछ नयी बात तो नहीं। सन् तीस से ही जब से 'पाटी' का प्लेज लिया, तभी से कॉमरेड···।"

"तब की बात छोड़िए। आजकल कोई नहीं बोलता।···आपकी बोली सुनकर लोग हँसते हैं, इसी के चलते।"

"इसमें हँसने की क्या बात है?"

"खैर, बहस छोड़िए! आपसे बहस में कौन पार पायेगा? हाँ, तो क्या कह रहे थे आप चन्दा के बारे में?"

"कहना क्या है? पिछले छौ महीने से साहू की दूकान का बकाया बढ़ते-बढ़ते ढाई सौ पर पहुँच गया है। जिला रैली के समय टीसन के मारवाड़ी का पचास रुपया बकाया अब तक चुकता नहीं हुआ। पाट के समय चन्दा की उम्मीद थी। मगर भुखमरी के समय कौन माँगता है, और कौन देता है चन्दा? अब धान का समय आया है तो अभी कॉमरेड साथी महीना-भर से 'फिड़ाड' हैं···।"

बलराम चौंका—"फिरार? कौन है फिरार?"

गनपत मुसकराकर बोला, "फिड़ाड़ माने वह फिड़ाड़ नहीं। माने अभी सभी कॉमरेड क्षेत्र से बाहर हैं।"

बलरामजी गम्भीर हो गये। उठते हुए बोले, "गनपतजी, आप ठीक कहते हैं। लगता है, सभी अब फरार हो जायेंगे।"

"मतलब?"

"मतलब आप समझकर क्या कीजियेगा। वह सब 'हाई लेवेल' और 'सिद्धान्त की लड़ाई' की बात आप क्या समझिएगा?"

गनपत और कुछ समझे या नहीं, आदमी के मन की बात को पढ़ना जानता है। बलरामजी की बात में उसको एक ख़ास क़िस्म की 'झांस' लगी।···आलू के भुर्ते में खराब तेल की गंध!

हाई लेवेल! गनपत अंग्रेजी पढ़ा-लिखा नहीं है तो क्या? सैकड़ों अंग्रेजी के शब्दों का मतलब वह समझता है। बोलता है—केपिटलिस्ट, बुर्जुआ, प्रोलेतारियत, कुलक, रिएक्शनरी, गांधियाइट, पीस, पार्टी-लिटरेचर, और भी अनेक शब्द।

बलरामजी ही नहीं, सभी 'नये कॉमरेड' गनपत को तीन कौड़ी का

आदमी भी नहीं समझते हैं। अभी साथी जियाउद्दीन या शैलेन्दरजी अथवा गोपालजी होते तो क्या किसी रैली से या मीटिंग से लौटकर इसी तरह मुंह लटकाकर, भौंह चढ़ाकर बातें करके घर चले जाते—बीवी के पास सटकर सोने? ऑफ़िस सेक्रेटरी बलरामजी का जब से गौना हुआ है, सूरज डूबने के पहले ही ऑफ़िस बन्द करके घर भाग जाते हैं।

इधर कई वर्षों से गनपत को लगता है कि हर तरफ़ एक मनहूसियत घनी होकर छा रही है। कहीं किसी के मन में किसी बात के लिए उत्साह नहीं। आख़िर यह रोग गनपत की 'पाटी' को भी लग गया? इस बार जिला कान्फरेंस में वह जी खोलकर इस सवाल को पेश करेगा।

वह जानता है कि सवाल पेश करने के लिए वह ज्यों ही उठेगा, नव-तुरिया कॉमरेड लोग आपस में फुसफुसाकर मुसकराने लगेंगे, कपट-खाँसी खाँसेंगे, और कोई-कोई चिल्लाकर कहेंगे, 'कॉमरेड गनपत! यह सवाल कल्चरल प्रोग्राम के समय स्टेज पर पेश कीजियेगा।'

'हूँ! स्टेज पर! स्टेज···।'

उँगलियों पर जोड़ने की ज़रूरत नहीं। गनपत का सब-कुछ जोड़ा हुआ है। पैंतीस साल पहले वह सबसे पहले आर्यसमाजी सभा-मंच पर खँजड़ी बजाकर 'अछूतोद्धार वाला गीत' गाने के लिए खड़ा हुआ था।

उस सभा की याद आते ही परबतिया की याद आ जाती है। जिसके हाथ का पानी पीने से जाति मारी जाये, प्रेम में पड़कर गनपत ने 'नीच कुल' की उसी परबतिया के मुंह का 'चुम्मा' लिया था। 'सत्त' किया था—सब-कुछ छूट जाये, परबतिया को वह कभी नहीं छोड़ेगा। जाति-समाज के अलावा घर के लोगों ने गनपत को तरह-तरह की यातनाएँ दीं। गनपत ने हारकर आर्यसमाज के मन्त्री के पास अरज़ी दी। लेकिन तब तक परबतिया का बाप परिवार सहित गांव छोड़कर भाग गया था।

गनपत फिर लौटकर घर नहीं गया, गाँव नहीं गया। माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुम्ब-परिवार, गाँव-समाज—सबसे 'नेह-छोह' तोड़कर 'देस' और 'दस' के काम में लग गया। जहाँ कहीं भी सभा होती, गनपत सबसे पहले हाथ में खँजड़ी लेकर गीत शुरू कर देता—'हिन्दुओ! दिल में सोचो विचारो जरा—अपने भाई से नफ़रत···।'

और सन् तीस में इसी गीत को गाने के अपराध में वह पकड़ा गया, जेल गया, सज़ा भोगी। उसी बार जेल में ही 'सरमाजी' की कृपा से वह कॉमरेड हो गया···।

सरमाजी ने उसकी 'टीक' को दाढ़ी बनाने वाली 'पत्ती' से कतर दिया था, और जनेऊ को उतारकर पैंजामा में फँसा दिया था। और बोले

थे, "आज से तुम कॉमरेड गनपत। सिध-उंध कुछ भी नहीं। सिर्फ़ कॉमरेड···।"

याद है, बावनदास और चुन्नीदास ने मिलकर गनपत को कितना 'धिक्कारा' था! मगर वह टस-से-मस नहीं हुआ। उसने बावनदास को चिढ़ाने के लिए सरमाजी से सीखा हुआ सवाल पेश कर दिया था—"बावनदासजी, चर्खा चलाने और बकरी का दूध पीने से सुराज कैसे मिलेगा, समझा दीजिए ज़रा!"

जेल से निकलने के बाद सारे ज़िले में गनपत ही अकेला 'पाटी कॉमरेड' रहा कई वर्षों तक। एक ही साल में बिहार प्रान्त के कई 'किसान फ्रंट' और मजदूर-मोर्चों पर पहुँचकर गनपत ने मेहनतकशों की लड़ाई में साथ दिया, नारा लगाया, धरना दिया, खँजड़ी बजाकर गीत गाये, अछूतोद्धार के बदले सरमाजी का सिखाया हुआ 'अन्तर्राष्ट्रीय-गीत' गाया—'उग रहा है आफ़ताब लाल-लाल आफ़ताब···जाग रे किसान भाई, जाग! जाग रे मजदूर भाई, जाग···!'

वैष्णव माँ-बाप का बेटा गनपत! जन्म से ही वैष्णव था। जिसको कहते हैं 'गर्भदास'। सो सरमाजी ने जब परीक्षा ली तो वह खरा उतरा। ···मुर्गी का अंडा नहीं, बिना किसी घृणा और संकोच के वह 'मुर्गमुसल्लम' खा गया था। सरमाजी बोले थे, "शाबाश कॉमरेड! तुम जन्मजात इन्क़लाबी हो!"

स्कूल-कॉलेज के फ़ेलियर लौंडे-लड़ंगड़े क्या समझेंगे कि कॉमरेडशिप किसको कहते हैं! ···डेहरी ऑफ़िस में सात साथियों के बीच बस दो पाजामे, तीन हाफ़-पैंट और एक ही धोती। और उसी में सभी साथी मजे में काम चला लेते थे। सप्ताह-भर सत्तू घोलकर पीते थे, प्रेम से मिल-जुलकर।···अब तो हर रैली के समय पत्तल पर ही 'इन्क़लाब' छेड़ देते हैं साथी लोग—"यह क्या बात है? खाने के समय कोई खाये पुआ-पूड़ी, कोई भूजा फाँके? अन्याय है! जुल्म है!"

आज किसी साथी से सभा का ऐलान करने को कहिए, बिना जीप और लाउडस्पीकर के। तुरत तमककर जवाब देगा, "हम क्या 'भोलटियर' हैं?" अपनी पार्टी की सभा का ऐलान करने में इन्हें लाज आती है। पार्टी का झंडा कंधे पर लेकर चलने में इज्ज़त चली जाती है। गनपत ने अकेले ढोल बजाकर मुनादी और ऐलान किया है—"भाइयो! देस की गरीबी को दूर करने के लिए, पूँजीवाद का खात्मा करके किसानों और मज़दूरों का राज कायम करने के लिए, आज चार बजे दिन में···!"

और गनपत नहीं होता तो उस गाँव में यह 'शहीद किसान आश्रम'

कभी खुलता भी ? तीन-तीन नामी ज़ुल्मी और ज़ालिम जमींदारों के इस खूनियाँ इलाक़े में किसी पार्टी का 'वर्कर' कभी खाँसी करने के लिए भी नहीं आता था—डर के मारे। दिन-दहाड़े मारकर लाश को ग़ायब कर देने वाले तीनों जमींदारों की आठ सौ एकड़ ज़मीन पर 'बकाश्त-संघर्ष' छेड़ने का प्रस्ताव पास करके 'पार्टी' चुपचाप महीनों बैठी रही। न किसी बहादुर कॉमरेड का क़दम कभी आगे बढ़ा, और न कोई क्रान्तिकारी किसान आगे आया। तब गनपत ने ही बीड़ा उठाया था।···ज़मींदार के सिपाहियों ने अपनी समझ में उसको मारकर फेंक दिया था। मगर गनपत मरते-मरते जी गया था। होश में आते ही वह अस्पताल में नारे लगाने लगा था—'बकाश्त आन्दोलन ज़िन्दाबाद ! बिसनपुर के किसान ज़िन्दाबाद !' यदि गनपत उस दिन घायल होकर अस्पताल नहीं पहुँचता तो मामला 'बकाश्त बोर्ड' में कभी नहीं जाता।···आठ सौ एकड़ ज़मीन मुफ़्त में जीतने के बाद बिसनपुर के किसानों ने दो एकड़ ज़मीन मिल-जुलकर आश्रम खोलने के लिए दिया—सो भी बहुत कहने-सुनने और 'धिक्कारने' पर।

आश्रम जब से खुला है, ज़िले-भर के कॉमरेड शुरू अगहन में ही बोरे-बोरियाँ लेकर पहुँच जाते हैं—धान वसूली के लिए। किसी को बहिन की शादी में मदद चाहिए, किसी को 'घर-खर्च' के लिए। गनपत को एक ही साथ अपने इलाक़े की लाज और पार्टी-कॉमरेडों की इज़्ज़त रखनी पड़ती है।

ज़िले-भर में बस यही एक क्षेत्र है, जहाँ से पार्टी का उम्मीदवार विधान-सभा के लिए विजयी हुआ—सिर्फ़ इसी आश्रम की महिमा से।

लालटेन भकभुकाकर बुझ गयी। गनपत के मन में अचानक 'निरगुन' की एक कड़ी गूँज गयी—तेरो जनम अकारथ जाय मूरख···!

गनपत ने सपने में देखा—चोर 'पार्टी' ऑफ़िस का बक्सा उठाकर भागा जा रहा है। उसने ज़ोर से पुकारने की चेष्टा की—चो—ओ—ओ—ओ ! चो—चो—चो···!

गनपत का सपना झूठ नहीं, सच साबित हुआ।

सुबह कॉमरेड चन्द्रिकाजी ने आकर महाअशुभ समाचार सुनाया—"पार्टी दो टुकड़ों में बँट गयी।"

गनपत को लगा, कॉमरेड चन्द्रिका के मुँह से निकली हुई बात ने वज्रपात कर दिया। काग़ज़ात, चन्दा-बही, रसीद वाउचर, मोहर—सब कुछ ग़ायब। गनपत ने कहा, "कल पहली पहर रात में कॉमरेड बलराम आये थे···।"

गनपत की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि कॉमरेड चन्द्रिका ने उसके गाल पर कसकर तमाचा जड़ दिया। वह तिलमिलाकर कुछ कहना चाहता था, मगर कॉमरेड चन्द्रिका चिल्लाने लगा—"आख़िर आपको यहाँ किस काम के लिए रखा गया है ? चन्दा वसूल कर पेट पालने के लिए सिर्फ़? आप जानते नहीं थे कि बलराम डिसिडेन्ट, माने बाग़ी मेम्बरों के साथ है ? ऐं ?"

"नहीं जानता था," गनपत ने सीधा और सही जवाब दिया, "कौन बाग़ी है, और कौन दाग़ी, यह मुझे क्या मालूम ?"

"आप ग़द्दार हैं," चन्द्रिका ने उँगली उठाकर पिस्तौल का निशाना लेने के लहजे में कहा, "आपने पार्टी के साथ ग़द्दारी की है। आप मक्कार हैं !"

एक-से-एक तेज़ और नुकीली गाली गनपत की देह में धँसती जा रही है। आस-पास गाँव-भर के लोग—औरत-मर्द—जमा हो गये हैं।···ग़द्दार, मक्कार ! फटकार !

कॉमरेड चन्द्रिका ने चलते समय चेतावनी दी, "इसका नतीजा बाद में जो कुछ भी हो, मैं अभी आपको बरख़ास्त करता हूँ। चले जाइए···!"

कॉमरेड चन्द्रिका के जाते ही कॉमरेड बलराम अपने नये साथियों के साथ आया। गनपत की डबडबायी हुई आँखें झरने लगीं।

बलराम ने कहा, "कॉमरेड गनपत, रोइए मत। बहादुरी से इन डिक्टेटरशाहों का मुक़ाबला करना होगा। पेटी-बुर्जुआ के बच्चों ने पार्टी को अपनी ज़मींदारी समझ लिया था।"

गनपत ने भर्रायी हुई आवाज़ में कहा, "कॉमरेड बलरामजी, आपने ऐसा काम क्यों किया ? यदि जानता कि आप पार्टी आफ़िस से सामान लेने आये हैं, तो हरगिज़···।"

बलराम के बदले में इस बार बोला अकालू महतो का अधपगला बेटा सुधीर महतो, "गनपतजी, आप डूबकर पानी पीते हैं, और समझते हैं कि बात छिपी हुई है। पार्टी ऑफ़िस दिन-रात देवा-मुसम्मात के साथ इश्क़-बाज़ी करने के लिए नहीं बना है।"

गनपत अब बेपानी हो गया। आम जनता के बीच उसकी इज़्ज़त उतर गयी। उसको नंगा कर दिया सुधीर महतो ने। वह ग़द्दार है, मक्कार है, बदचलन है। अब क्या रह गया है देखने-सुनने को !

बलराम ने जाते समय लाल रंग के पर्चों का एक बण्डल देकर कहा, "आज हाट में, स्टेशन पर, हर जगह यह पर्चा बँट जाना चाहिए। समझे ?"

गनपत अपनी झोंपड़ी के अन्दर चला गया और बिछावन पर कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। उसकी देह के रोम-रोम में गालियाँ गड़ रही थीं। उसने लाल पर्चे को टटोलकर पढ़ना शुरू किया। पार्टी के कई बड़े लीडरों ने जनता को सावधान किया है—'किसान-मजदूरों के नाम पर, पूँजीपतियों की थैली से पार्टी चलानेवाले धोखेबाजों से होशियार···!'

इससे आगे एक शब्द भी नहीं पढ़ सका वह। गाली-गलौज, कीचड़-गोबर! ···सब गुड़-गोबर!

गनपत के पेट में पित्त का प्रकोप शुरू हुआ। अब 'बाय' भी जोर मारेगा। हाँ, मिचली आने लगी।

कौन असली, कौन नक़ली? कॉमरेड चोरघड़े या कॉमरेड जादव? पिछले साल प्रान्तीय किसान सभा का सभापतित्व करने आये थे चोरघड़े जी। स्वागत-भाषण में जादवजी ने उनकी कितनी तारीफ़ की थी! ···सब झूठ? और चोरघड़ेजी ने बिहार की पार्टी को देशद्रोहियों का दल कह दिया है इस पर्चे में।

गनपत ने तय किया कि वह पटना जायेगा, दिल्ली जायेगा। हर जगह के बड़े और छोटे साथियों से मिलकर बातें करेगा, रोयेगा, कलपेगा, जनता की दुर्दशा की कहानियाँ सुनायेगा। खँजड़ी बजाकर गीत गायेगा—भैया, झगड़ न जाहु कचहरिया···!

जादवजी और चोरघड़े केन्द्रीय पार्टी ऑफ़िस के सामने लड़ रहे हैं। तलवार लेकर एक-दूसरे पर हमला करते हैं, और गनपत उन दोनों के बीच जाकर खड़ा हो जाता है—'सान्ति, सान्ति!' मगर दोनों की तलवार गनपत की गरदन पर।

गनपत की आँखों के आगे पन्द्रह साल पहले देखे हुए किसी नाटक का दृश्य उपस्थित हुआ, फिर बिला गया। उसकी देह रह-रहकर सिहरने लगी। मलेरिया बुखार चढ़ने के पहले ऐसी ही सिहरन और कँपकँपी देह को झिझोड़ जाती है।

गनपत ने कम्बल ओढ़ लिया, कै किया, सौंफ की बुकनी मुँह में डालकर लेट गया। सिहरन के बाद तेज बुखार के साथ 'बाय'। वह बकने लगा। चालीस साल के बाद—देश से मलेरिया उन्मूलन के बाद गनपत पहली बार बीमार पड़ा है। इस बीच कभी सिर-दर्द भी नहीं हुआ। उसके मुँह से पहली करुण पुकार निकली—"मैया—गे-ए-ए-ए! पारबती—ई-ई-ई!"

उसने देखा, सरमाजी आये हैं, हाथ में लाल-लाल सेब और नारंगी लेकर। फल का रस निकालकर गनपत से कहते हैं—'पी लो, कॉमरेड! कलेजा ठण्डा हो जायेगा।' गनपत एक घूँट पीता है। उसका गला जलने लगता है। कड़वा जहर!

परबतिया आयी। पैताने में बैठकर पाँव सहलाने लगी। मगर गनपत के बड़े भाई और बाबूजी हाथ में भाला लेकर आये, और आँखें तरेरने लगे।

रेशम मजदूर यूनियन भागलपुर की हड़ताल! गनपत खंजड़ी बजाकर जूलूस के आगे गा रहा है—'दुनिया के मजदूरो, एक हो···!'

पुलिस आँसू-गैस छोड़ती है। घुड़सवार सिपाही घोड़े को दौड़ाता, हड़तालियों को चाबुक से पटापट पीटता, रौंदता, धूल उड़ाता हुआ चला जाता है।

गनपत जेल के एक गन्दे सेल में पड़ा हुआ है। सिर पर पट्टी बँधी हुई है। परबतिया—परबतिया—परबतिया—पारो-ओ-ओ···!

सात दिन सताने के बाद 'सतैया बुख़ार' उतर गया। अस्पताल के डॉक्टर साहब ने जी-जान से इलाज किया। कुसमी कह रही थी—"दो-दो 'जकशैन' एक साथ देते थे डागडर बाबू।" और इसी डॉक्टर के खिलाफ़ गनपत ने, बलराम के कहने पर, पर्चा छपाकर बँटवाया था—बिसनपुर अस्पताल के ज़ुल्मी डॉक्टर को जल्दी बरख़ास्त करो!

सिर्फ़ सात दिन का बुख़ार नहीं, गनपत को लगता है, पैंतीस साल से चढ़ा हुआ ज्वर आज उतरा है। इतने दिनों तक एक 'अन्ध सुरंग' में वह चल रहा था—बेमतलब, बेकार, अकारथ।

कुसमी गरम दूध में धान का लावा डालकर ले आयी। "डागडर साहब बोले हैं कि 'पथ' में माँगुर मछली चाहिए। सोभित को भेज दिया है। साँझ होते-होते एकाध सेर मछली जरूर ले आवेगा।"

फिर कुसमी बोली, "सात दिन में गाँव का बच्चा-बच्चा आकर देख गया, कुसल पूछ गया। मगर कोई 'साथी कामरेट' झाँकी मारकर देखने के लिए भी नहीं आया। कल बलराम बाबू आकर कह गये हैं कि 'गनपत को अपने घर ले जाओ। पाटी आफ़िस खाली कर दो। उसको बरखास्त कर दिया गया है'।"

परिवार, जाति, धर्म, समाज, सरकार और हर अन्याय, अत्याचार से हमेशा लड़नेवाला लड़ाकू गनपत आज अखाड़े में हारे हुए पहलवान की तरह पड़ा हुआ है। सभी उसकी पीठ पर एक लात लगाकर, गाली देकर चले जाते हैं।···पैंतीस साल तक साधु-संन्यासियों की तरह लंगोटबन्द रहकर, जीभ-मुँह और मन में लगाम लगाकर, उसने पब्लिक का काम किया।

किसी का एक तिनका न चुराया, न पार्टी का एक पैसा गोलमाल किया। माँ-बाप, भाई-बहन, गाँव समाज और परबतिया से भी बढ़कर पार्टी और पार्टी के झण्डे को प्यार किया। सब बे-का-र···!

गनपत को लगता है कि चाँद-सूरज में भी दरार पड़ गयी है। दुनिया की हर चीज आज दो भागों में बँटी हुई-सी लगती है। हर आदमी के दो टुकड़े, दो मुखड़े और दरका हुआ दिल।

जिन बातों को आज तक पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों और जंग-बाजों की बात समझकर अनसुनी कर देता था, आज वे ही बातें बार-बार याद आती हैं—

'गनपत, तुम्हारे लीडर लोग, यानी तुम्हारी पार्टी, जाति और धर्म को अफ़ीम कहती है। मगर तुम्हारे लीडर लोग अपने बच्चे-बच्चियों की शादी किसी दूसरी जाति में क्यों नहीं करते ? लड़के की शादी में कॉमरेड राम-लगन सरमा ने पचीस हजार रुपये तिलक में गिनवा लिया। तुम्हारे लीडरों के बच्चे दार्जिलिंग और देहरादून में पढ़ते हैं। तुम्हारे सेक्रेटरी की बीवी कांग्रेसी मिनिस्टर होने के लिए जाति की गुटबन्दी करती है। तुम्हारे तूफ़ानजी ने मिल-मालिक से मिलकर मज़दूरों की गरदन पर छुरी···!'

गनपत के सामने एक-से-एक बड़े कॉमरेड की तसवीर उभरती है—चोरघड़ेजी, जादवजी, गोपालजी, सिनहा साहेब, ठाकुरजी, तूफ़ानजी। सभी तसवीरों के मुँह से बस एक ही बात निकली है—"हम ग़लत रास्ते पर थे···।"

एक अन्ध-सुरंग से बाहर निकलकर गनपत बेदम पड़ा हुआ है। उसके पीले मुखड़े पर उसकी खिचड़ी मूँछ लटकी हुई हैं।···पैंतीस साल तक वह ग़लत रास्ते पर ग़लत दिशा की ओर चलता रहा। न जाने उसने कितनी ग़लतियाँ कीं ! न जाने कितने लोगों को गुमराह किया !

यदि परबतिया का पेट गिराया न जाता तो उसकी सन्तान पैंतीस साल की होती। यदि बेटा होता तो बलराम की उम्र का होता अब।

परबतिया को उसने धोखा दिया। पहली ग़लती, जिसका फल वह आज तक भोग रहा है।

कुसमी पिछले पाँच साल से गनपत से प्रेम-भाव का बरताव करती है। गनपत सब कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझने का भाव दिखलाता है। मगर बेवा कुसमी सतीनारी की तरह टुकुर-टुकुर उसका मुँह देखती रहती है। तिस पर अकालू महतो का पियक्कड़ बेटा ताना मार गया—बेवा-मुसम्मात के साथ इश्कबाजी···!

कुसमी भरथा नाई को बुला लायी। हजामत बनाते समय कुसमी ने

कहा, "मूँछ भी छाँट दो। दूध-बार्ली पीते समय 'लस्टम-पस्टम' हो जाती है···।"

आलू का भुर्ता और गरम भात खाकर मुँह का कसैलापन दूर हुआ। सौंफ की बुकनी मुँह में डालकर, उसने आईने में अपना मुखड़ा देखा।··· आश्चर्य ! उसका मुँह ठीक उस मरियल घोड़े की तरह लम्बा हो गया है, जिसके (पैंतीस साल पहले) अगले दोनों पैरों को 'छान' कर कसाई मालिक ने छोड़ दिया था। ज़मीन पर लेटा हुआ, 'हुकुर-हुकुर' करके साँस लेता हुआ, टाँगों को झटकारता ! कौओं ने जिसकी देह में न जाने कितने घाव कर दिये थे। पर परबतिया हँसिया लेकर दौड़ी गयी थी। पैरों के बन्धन कट जाने के बाद, 'मरतुहार' घोड़ा बैठ गया था, सिर झुकाकर। फिर धीरे-धीरे धरती को सूँघने लगा था···।

गनपत ने धीरे-धीरे अपने पैर फैलाये।

बाहर कॉमरेड चन्द्रिका की आवाज सुनायी पड़ी। एक लाल पगड़ी वाले सिपाही ने झाँककर अँगनाई की ओर देखा और बोला, "चपरासी साहेब तऽ होने चटाई पर पैर पसार के पसरल बाड़न।"

थाने के दारोगा और सिपाही को देखकर गनपत की ख़ाली, खोखली काया में कुछ भरने लगा। उसकी शिराओं में झनझनाहट शुरू हो गयी। उसने एक बार कॉमरेड चन्द्रिका की ओर देखा। दारोगा साहेब ने कहा, "देखो जी गनपत, तुम आश्रम के चपरासी हो न ?"

"तुम-ताम मत बोलिए। मैं चपरासी नहीं किसी का।"

दारोगा ने चन्द्रिका की ओर देखा।

चन्द्रिकाजी बोले, "देखो गनपत, दारोगा साहब आश्रम पर दफ़ा 144 लगाने आये हैं। तुम···!"

गनपत अब अच्छी तरह सँभल चुका था। उसने स्वस्थ और निडर स्वर में जवाब दिया—"यहाँ आश्रम कहाँ है ? यह मेरा घर है। मेरी जमीन है। यह सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं, किसी की पार्टी-बन्दी का अखाड़ा नहीं।"

पुलिस का सिपाही अँगनाई की ओर झाँककर कुछ देख रहा था। गनपत ने कड़ककर कहा, "ए सिपाहीजी, उधर 'जनाना हवेली' में क्या ताक-झाँक कर रहे हैं ? नौकरी भारी हुई है क्या ?···"

दारोगा ने पूछा, "तुम···तुम्हारे···आपके पास कोई सबूत है ?"

"सबूत ! कैसा सबूत ? कागजी या जुबानी ? गवाही ?···सोभित की माँ, मेरी झोली इधर दे जाना।"

शोभित की माँ, यानी कुसमी घूँघट काढ़कर, बाहर आयी। गनपत

झोली से अपना 'पोथी-पत्तर' निकालने लगा—'मार्क्सवाद की मोटी बातें', 'किसानों और मजदूरों के गीत', 'जालिम ज़मींदरवा···' गीत, बैजवाड़ा का मशहूर प्रस्ताव, तेलंगाना की लाल भवानी, शहीद फ़िल्म के गाने, 'देश के दुश्मन', गनतन्त्र···यह लीजिए कागजी सबूत। और जुबानी गवाही? गाँव के बच्चे-बच्चे से पूछ लीजिए।"

दारोगा साहब ने दस्तावेज के मुड़े हुए पन्नों को सीधा करके शुरू से अन्त तक पढ़ा। फिर मुसकराकर, चन्द्रिकाजी की ओर देखने लगे, "यह तो ठीक ही कहता···कहते है। जमीन-जायदाद सब इन्हीं के नाम से रजिस्टरी हुआ है।"

चन्द्रिकाजी अब चिल्लाने लगे—"बेईमान कहीं का! 'पब्लिक प्रापर्टी' को हड़पना चाहता है? देखना है कि तुम···!"

गनपत उठकर खड़ा हो गया। "पब्लिक का नाम मत लो चन्द्रिका, पब्लिक अन्धी नहीं, सब-कुछ देखती है, समझती है। अपने 'स्वारथ' के लिए पाटी को टुकड़े-टुकड़े करने वाले···!"

कुसमी अन्दर से ही बोली, "इन लोगों के मुँह लगने की क्या जरूरत? डागडर साहब ने मना किया है न! ···'लड़ि मरे बरदा, और बैठा खाय तुरंग'।"

किन्तु गनपत ने तब तक नारा बुलन्द कर दिया था—"इनकिलाब, ज़िन्दाबाद! ···फूटपरस्तो, मुर्दाबाद! ···पाटी के दुश्मन, सफेदपोश!"

एकत्रित भीड़ में तुरन्त उत्तेजना की लहर दौड़ गयी। लोगों ने गनपत के साथ नारा लगाना शुरू किया तो दारोगा साहब जल्दी से बाहर चले गये। उन्होंने चन्द्रिका से अँग्रेजी में कुछ कहा।

सिपाही ने घबराकर कहा, "हुजूर, यह पाटीवालों का घरेलू झगड़ा है। अब यहाँ ठहरियेगा तो मामला बिगड़ जायेगा।"

दारोगा और चन्द्रिका के जाने के बाद एकत्रित लोगों ने जय-जयकार किया, 'बोलिए एक बार प्रेम से—गनपतजी की जै! किसानों के नेता—गनपतजी! मजदूरों के नेता—गनपतजी! गनपतजी जिन्दाबाद! जो हमसे टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा!'

पैंतीस साल में पहली बार अपनी 'जय' और 'जिन्दाबाद' के नारे सुनकर गनपत का दिल उमड़ आया।

कोलाहल और कलरव के बीच किसी ने भाषण देना शुरू कर दिया—"भाइयो, इस बार ग्राम-पंचायत के चुनाव में, मुखिया के चुनाव में, इन लम्बे कुरते और पाजामे वाले फोकटिया बाबुओं के छक्के छुड़ा दो।··· आज रात यहाँ खूब धूम से 'किसान कीर्तन' होना चाहिए।"

जब सभी चले गये, और एकान्त हुआ, तो गनपत ने झोंपड़ी के अन्दर से आवाज दी—"सोभित की माँ! ···ज़रा इधर आना।"

कुसमी अन्दर गयी। गनपत का चेहरा देखकर वह डरी—फिर बुखार आ गया क्या? उसने गनपत के कपाल पर हाथ धरा। गनपत ने कुसमी की कलाई पकड़ ली। उसके ओठ थरथराये। उसने कुसमी के चेहरे को अपने मुंह के पास खींच लिया। काँपती हुई आवाज़ में बोला, "कुसुम,··· लेकिन यह पाप है, अन्याय है। पब्लिक की सम्पत्ति, पाटी की जमीन··· आश्रम में···यह पाप—यह घोर पाप है···!"

कुसमी को भुने हुए सौंफ की गन्ध बहुत भली लगी। वह मान-भरे स्वर में बोली, "कैसा पाप? चन्द्रिका बाबू ने पाटी के चंदे से पुरैनियाँ में पुख्ता घर बनवा लिया। रामलगन बाबू ने जमींदारों से घूस लेकर गरीब रैयतों के मुकदमों को खराब कर दिया। सो···।"

"कुसुम, लोग कुछ भी करें। मुझसे यह पाप-कर्म नहीं होगा। तुम मुझे···तुम मुझे जिलाना चाहती हो तो अपनी झोंपड़ी में ले चलो।"'

कुसमी ने कुछ क्षण गनपत की डबडबायी हुई आँखों और तमतमाये हुए चेहरे को देखा। फिर बोली—"और···यह आश्रम?"

"मैं ज़मीन वापस दे दूंगा लोगों को। दस जन की दी हुई चीज़ 'धर्मदा' होती है। इसे अकेला भोगनेवाला कभी सुख-चैन से नहीं रह सकता।··· और अब मुझसे पब्लिक का काम नहीं हो सकेगा। जब पाटी ही टूट गयी···!"

वह बच्चों की तरह हिचकियाँ लेकर रोने लगा।

कुसमी अपने गन्दे आँचल से गनपत के आंसू पोंछती हुई बोली—"रोइये मत।"

गनपत ने कुसमी को छाती से चिपका लिया।···आह! पैंतीस साल के बाद औरत की छाती की गरमी उसकी देह में पहली बार आँधी की तरह समा गयी। उसने कुसमी के काले-काले ओठों को चूमने के लिए मुंह बढ़ाया, किन्तु रुक गया।

"नहीं कुसुम, यहाँ नहीं···। यहाँ नहीं···चलो अपने घर। यहाँ एक क्षण भी रहने का मुझे अधिकार नहीं।"

कुसमी उठ खड़ी हुई। गनपत का हाथ पकड़कर उठाते हुए बोली—"चलो।"

"माँ! मैया! देख, कितनी मछली ले आया हूँ!"

शोभित ने बांस की टोकरी सामने रख दी। काली-काली माँगुर मछलियां छलमलाने लगीं।

कुसमी बोली—"मछली का सगुन सुभ होता है।"

गनपत हँसा।

कुसमी ने अपने इकलौते जवान बेटे से कहा—"बबुआ, तुम काका को सहारा देकर ले चलो। मैं बिछावन समेटकर ले आती हूँ।"

शोभित ने अपनी माँ का मुँह देखते हुए कहा—"कहाँ ?"

गनपत बोला—"जहाँ तुम्हारा जी चाहे, बेटा !"

गनपत ने एक बार उलटकर देखा। पार्टी का झंडा बदरंग होकर भी फड़फड़ा रहा है, हवा में। उसे लगा कि वह खुद पार्टी का झंडा है, जिसे शोभित कन्धे पर ढोकर ले जा रहा है···।

एक आदिम रात्रि की महक

···न:···करमा को नींद नहीं आयेगी।

नये पक्के मकान में उसे कभी नींद नहीं आती। चूना और वार्निश की गन्ध के मारे उसकी कनपटी के पास हमेशा चौअन्नी-भर दर्द चिनचिनाता रहता है। पुरानी लाइन के पुराने 'इस्टिसन' सब हज़ार पुराने हों, वहाँ नींद तो आती है।···ले, नाक के अन्दर फिर सुड़सुड़ी जगी ससुरी···!

करमा छींकने लगा। नये मकान में उसकी छींक गूँज उठी।

"करमा, नींद नहीं आती ?" 'बाबू' ने कैम्प-खाट पर करवट लेते हुए पूछा।

गमछे से नथुने को साफ़ करते हुए करमा ने कहा—"यहाँ नींद कभी नहीं आयेगी, मैं जानता था, बाबू !"

"मुझे भी नींद नहीं आयेगी," बाबू ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा—"नयी जगह में पहली रात मुझे नींद नहीं आती।"

करमा पूछना चाहता था कि नये 'पोख्ता' मकान में बाबू को भी चूने की गन्ध लगती क्या है ? कनपटी के पास दर्द रहता है हमेशा क्या ?···बाबू कोई गीत गुनगुनाने लगे। एक कुत्ता गश्त लगाता हुआ सिगनल-केबिन की ओर से आया और बरामदे के पास आकर रुक गया। करमा चुपचाप कुत्ते की नीयत को ताड़ने लगा। कुत्ते ने बाबू की खटिया की ओर थुथना ऊँचा करके हवा में सूँघा। आगे बढ़ा। करमा समझ गया—जरूर जूता-खोर कुत्ता है,

साला !···नहीं, सिर्फ़ सूँघ रहा था। कुत्ता अब करमा की ओर मुड़ा। हवा सूँघने लगा। फिर मुसाफ़िरखाने की ओर दुलकी चाल से चला गया···।

बाबू ने पूछा—"तुम्हारा नाम करमा है या करमचन्द या करमू ?"

···सात दिन तक साथ रहने के बाद, आज आधी रात के पहर में बाबू ने दिल खोलकर एक सवाल के जैसा सवाल किया है।

"बाबू, नाम तो मेरा करमा ही है। वैसे लोगों के हज़ार मुँह हैं, हज़ार नाम कहते हैं।···नितायि बाबू कोरमा कहते थे, घोस बाबू करीमा कहकर बुलाते थे, सिंघजी ने सब दिन कामा ही कहा और असगर बाबू तो हमेशा करम-करम कहते थे। खुश रहने पर दिल्लगी करते थे—हाय मेरे करम !···नाम में क्या है, बाबू ? जो मन में आये कहिये। हज़ार नाम···!"

"तुम्हारा घर सन्थाल परगना में है, या राँची-हजारीबाग की ओर ?"

करमा इस सवाल पर अचकचाया, जरा ! ऐसे सवालों के जवाब देते समय वह रमता-जोगी की मुद्रा बना लेता है। 'घर ? जहाँ धड़, वहाँ घर। माँ-बाप—भगवानजी !'···लेकिन, बाबू को ऐसा जवाब तो नहीं दे सकता !

···बाबू भी खूब हैं। नाम का 'अरथ' निकालकर अनुमान लगा लिया—घर सन्थाल परगना या राँची-हजारीबाग की ओर होगा, किसी गाँव में ? करमा-पर्व के दिन जन्म हुआ होगा, इसीलिए नाम करमा पड़ा। माथा, कपाल, होंठ और देह की गठन देखकर भी···।

···बाबू तो बहुत 'गुनी' मालूम होते हैं। अपने बारे में करमा को कुछ मालूम नहीं। और बाबू नाम और कपाल देखकर सब-कुछ बता रहे हैं। इतने दिन के बाद एक बाबू मिले हैं, गोपाल बाबू जैसे !

करमा ने कहा—"बाबू, गोपाल बाबू भी यही कहते थे ! यह 'करमा' नाम तो गोपाल बाबू का ही दिया हुआ है !"

करमा ने गोपाल बाबू का क़िस्सा शुरू किया—"···गोपाल बाबू कहते थे, आसाम से लौटती हुई कुली-गाड़ी में एक 'डोको' के अन्दर तू पड़ा था, बिना 'बिलटी-रसीद' के ही···लावारिस माल।"

···चलो, बाबू को नींद आ गयी। नाक बोलने लगी। गोपाल बाबू का क़िस्सा अधूरा ही रह गया।

···कुत्ता फिर गस्त लगाता हुआ आया। यह कातिक का महीना है न ! ससुरा पस्त होकर आया है। हाँफ रहा है।···ले, तू भी यहीं सोयेगा ? ठंढ ! सारे की देह की गन्ध यहाँ तक आती है—धेत्त ! धेत्त !

बाबू ने जगकर पूछा, "हूँ-ऊ-ऊ ! तब क्या हुआ तुम्हारे गोपाल बाबू

का ?"

कुत्ता बरामदे के नीचे चला गया। उलटकर देखने लगा। गुर्राया। फिर, दो-तीन बार दबी हुई आवाज में 'बुफ-बुफ' कर जनाने मुसाफ़िरख़ाने के अन्दर चला गया, जहाँ पैटमानजी सोता है।

"बाबू, सो गये क्या ?"

···चलो, बाबू को फिर नींद आ गयी ! बाबू की नाक ठीक 'बबुआनी आवाज' में ही 'डाकती' है ! ···पैटमानजी तो, लगता है, लकड़ी चीर रहे हैं !—गोपाल बाबू की नाक बीन-जैसी बजती थी—सुर में ! ! ···असगर बाबू का खर्राटा···सिंघजी फुफकारते थे और साहू बाबू नींद में बोलते थे —'ए, डाउन दो, गाड़ी छोड़ा···!'

···तार की घण्टी ! स्टेशन का घण्टा ! गार्ड साहब की सीटी ! इञ्जिन का बिगुल ! जहाज़ का भोंपा !—सैकड़ों सीटियाँ···बिगुल··· भोंपा···भों-ओं-ओं-ओं···!

—हज़ार बार, लाख बार कोशिश करके भी अपने को रेल की पटरी से अलग नहीं कर सका, करमा। वह छटपटाया। चिल्लाया, मगर ज़रा भी टस-से-मस नहीं हुई उसकी देह। वह चिपका रहा। धड़धड़ाता हुआ इञ्जिन गरदन और पैरों को काटता हुआ चला गया।···लाइन के एक ओर उसका सिर लुढ़का हुआ पड़ा था, दूसरी ओर दोनों पैर छिटके हुए ! उसने जल्दी से अपने कटे हुए पैरों को बटोरा—अरे, यह तो एन्टोनी 'गाट' साहब के बरसाती जूते का जोड़ा है ! गम-बूट !···उसका सिर क्या हुआ ? ···धेत्त, धेत्त ! ससुरा नाक-कान चबा रहा है···!

"करमा !"

—धेत्त-धेत्त !

"उठ करमा, चाय बना !"

करमा धड़फड़ाकर उठ बैठा।···ले, बिहान हो गया। मालगाड़ी को 'थुरू-पास' करके, पैटमानजी हाथ में बेंत की कमानी घुमाता हुआ आ रहा है।···साला ! ऐसा भी सपना होता है, भला ? बारह साल में, पहली बार ऐसा अजूबा सपना देखा करमा ने।

बारह साल में एक दिन के लिए भी रेलवे-लाइन से दूर नहीं गया, करमा। इस तरह 'एकसिडंटवाला सपना' कभी नहीं देखा उसने !

करमा रेल-कम्पनी का नौकर नहीं। वह चाहता तो पोटर, ख़लासी पैटमान या पानी पाँड़े की नौकरी मिल सकती थी। ख़ूब आसानी से रेलवे-नौकरी में 'घुस' सकता था। मगर मन को कौन समझाये ! मन माना नहीं।

रेल-कम्पनी का नीला कुर्ता और इञ्जिन-छाप बटन का शौक उसे कभी नहीं हुआ।

रेल-कम्पनी क्या, किसी की नौकरी करमा ने कभी नहीं की। नामधाम पूछने के बाद लोग पेशे के बारे में पूछते हैं। करमा जवाब देता है—'बाबू के 'साथ' रहते हैं।'···एक पैसा भी मुसहरा न लेनेवाले को 'नौकर' तो नहीं कह सकते !

···गोपाल बाबू के साथ, लगातार पाँच वर्ष ! इसके बाद कितने बाबुओं के साथ रहा, यह गिनकर बतलाना होगा। लेकिन, एक बात है—'रिलिफिया बाबू' को छोड़कर किसी 'सालटन बाबू' के साथ वह कभी नहीं रहा।··· सालटन-बाबू माने किसी 'टिसन' में 'परमानन्टी' नौकरी करनेवाला— फ़ैमिली के साथ रहनेवाला !

···जा रे गोपाल बाबू ! वैसा बाबू अब कहाँ मिले ? करमा का 'माय-बाप, भाय-बहिन, कुल-परिवार' जो बूझिए—सब एक गोपाल बाबू !··· बिना 'बिलटी-रसीद' का लावारिस माल था, करमा। रेलवे अस्पताल से छुड़ाकर अपने साथ रखा गोपाल बाबू ने। जहाँ जाते, करमा साथ जाता। जो खाते, करमा भी खाता।···लेकिन आदमी की मति को क्या कहिए ! रिलिफिया काम छोड़कर सालटनी काम में गये। फिर, एक दिन शादी कर बैठे।···बौमा···गोपाल बाबू की 'फैमली'—राम-हो-राम ! वह औरत थी ? साच्छात चुड़ैल !···दिन-भर गोपाल बाबू ठीक रहते। साँझ पड़ते ही उनकी जान चिड़िया की तरह 'लुकाती' फिरती।···आधी रात को कभी-कभी 'इसपेसल' पास करने के लिए बाबू निकलते। लगता, अमरीकन रेलवे-इञ्जिन के 'बायलर' में कोयला झोंककर निकले हैं।···करमा 'क्वाटर' के बरामदे पर सोता था। तीन महीने तक रात में नींद नहीं आयी, कभी।··· बौमा 'फों-फों' करती—बाबू मिनमिनाकर कुछ बोलते। फिर शुरू होता रोना-कराहना, गाली-गलौज, मार-पीट। बाबू भागकर बाहर निकलते और वह औरत झपटकर माथे का केश पकड़ लेती।···तब करमा ने एक उपाय निकाला। ऐसे समय में वह उठकर दरवाज़ा खटखटाकर कहता—"बाबू, 'इसपेसल' का 'कल' बोलता है···।" बाबू की जान कितने दिनों तक बचाता करमा ?···बौमा एक दिन चिल्लायी—"ए छोकरा हरामजादा के दूर कोरो। यह चोर है, चो-ओ-ओ-र !"

···इसके बाद से ही किसी 'टिसन' के फ़ैमिली क्वाटर को देखते ही करमा के मन में एक पतली आवाज़ गूँजने लगती है—चो-ओ-ओ-र ! हरामज़ादा ! फ़ैमिली क्वाटर ही क्यों—ज़नाना मुसाफ़िरख़ाना, ज़नाना दर्जा, ज़नाना···ज़नाना नाम से ही करमा को उबकाई आने लगती है।

···एक ही साल में गोपाल बाबू को 'हाड़-गोड़' सहित चबाकर खा गयी, वह जनाना ! फूल-जैसे सुकुमार गोपाल बाबू ! जिन्दगी में पहली बार फूट-फूटकर रोया था, करमा।

···रमता-जोगी, बहता-पानी और रिलिफिया बाबू ! हेड-क्वाटर में चौबीस घण्टे हुए कि 'परवाना' कटा— फलाने टिसन का मास्टर बीमार है, सिक-रिपोट आया है। तुरत 'जोआयेन' करो।···रिलिफिया बाबू का बोरिया-बिस्तर हमेशा 'रेडी' रहना चाहिए। कम-से-कम एक सप्ताह, ज्यादा-से-ज्यादा तीन महीने से ज्यादा किसी एक जगह में जमकर नहीं रह सकता, कोई रिलिफिया बाबू।···लकड़ी के एक बक्से में सारी गृहस्थी बन्द करके—आज यहाँ, कल वहाँ।···पानीपाड़ा से भातगाँव, कुरैठा से रौताड़ा। फिर, हेड-क्वाटर, कटिहार !

···गोपाल बाबू ने ही घोस बाबू के साथ लगा दिया था— 'खूब भालो बाबू। अच्छी तरह रखेगा।' लेकिन, घोस बाबू के साथ एक महीना से ज्यादा नहीं रह सका, करमा। घोस बाबू की बेवजह गाली देने की आदत ! गाली भी बहुत ख़राब-ख़राब ! माँ-बहन की गाली।···इसके अलावा घोस बाबू में कोई ऐब नहीं था। अपने 'समांग' की तरह रखते थे।···घोस बाबू आज भी मिलते हैं तो गाली से ही बात शुरू करते हैं—"की रे···करमा ? किसका साथ में है आजकल मादर्च···?"

···घोस बाबू को माँ-बहन की गाली देनेवाला कोई नहीं। नहीं तो समझते कि माँ-बहन की गाली सुनकर आदमी का खून किस तरह खौलने लगता है। किसी भले आदमी को ऐसी ख़राब गाली बकते नहीं सुना है करमा ने, आज तक।

···राम बाबू की सब आदत ठीक थी। लेकिन—भा-आ-री 'इस्की आदमी।' जिस टिसन में जाते, पैटमान-पोटर-सूपर को एकान्त में बुलाकर घुसुर-फुसुर बतियाते। फिर रात में कभी मालगोदाम की ओर तो कभी जनाना मुसाफ़िरख़ाना में, तो कभी जनाना-पैख़ाना में···छि:-छि:··· जहाँ जाते छुछुआते रहते—'क्या जी, असल-माल-वाल का कोई जोगाड़-जन्तर नहीं लगेगा ?'···आख़िर वही हुआ जो करमा ने कहा था—'माल' ही उनका 'काल' हुआ। पिछले साल, जोगबनी-लाइन में एक नेपाली ने खुकरी से दो टुकड़ा काटकर रख दिया। और उड़ाओ माल !···जैसी अपनी इज्जत वैसी परायी !

···सिंघजी भारी 'पुजेगरी' ! सिया सहित राम-लछमन की मूर्ति हमेशा उनकी झोली में रहती थी। रोज़ चार बजे भोर से ही नहाकर पूजा की घण्टी हिलाते रहते। इधर 'कल' की घण्टी बजती।···जिस घर में ठाकुर-

जी की झोली रहती, उसमें बिना नहाये कोई पैर भी नहीं दे सकता था।··· कोई अपनी देह को उस तरह बाँधकर हमेशा कैसे रह सकता है ? कौन दिन में दस बार नहाये और हज़ार बार पैर धोये ! सो भी, जाड़े के मौसम में ! ···जहाँ कुछ छूओ कि हूँहूँहूँ-हाँहाँहाँ-अरेरेरे— छू दिया न ?···ऐसे छुतहा आदमी का रेल-कम्पनी में आने की क्या ज़रूरत ?···सिंघजी का साथ नहीं निभ सका।

···साहू बाबू दरियादिल आदमी थे। मगर मदक्की ऐसे कि दिन-दोपहर को पचास-दारू एक बोतल पीकर मालगाड़ी को 'थुरूपास' दे दिया और गाड़ी लड़ गयी। करमा को याद है, 'एकसिडंट' की ख़बर सुनकर साहू बाबू ने फिर एक बोतल चढ़ा लिया।···आख़िर डाक्टर ने दिमाग़ ख़राब होने का 'सार्टिफिटिक' दे दिया।

···लेकिन, उस 'एकसिडंट' के समय भी किसी रात को करमा ने ऐसा सपना नहीं देखा !

···न···भोर-भोर ऐसी कुलच्छन-भरी बात बाबू को सुनाकर करमा ने अच्छा नहीं किया। रेलवे की नौकरी में अभी तुरत 'घुसवै' किये हैं।

···न···बाबू के मिज़ाज का टेर-पता अब तक करमा को नहीं मिला है। करीब एक सप्ताह तक साथ में रहने के बाद, कल रात में पहली बार दिल खोलकर दो सवाल-जवाब किया बाबू ने। इसीलिए, सुबह को करमा ने दिल खोलकर अपने सपने की बात शुरू की थी। चाय की प्याली सामने रखने के बाद उसने हँसकर कहा—"हेंह बाबू, रात में हम एक अ-जू-ऊ-ऊ-बा सपना देखा। धड़धड़ाता इन्जिन···लाइन पर चिपकी हमारी देह टस-से-मस नहीं···सिर इधर और पैर दोनों लाइन के उधर···एन्टोनी गाट साहेब के बरसाती जूते का जोड़ा···गमबोट···!"

"धेत्त ! क्या बेसिर-पैर की बात करते हो, सुबह-सुबह ? गाँजा-वाँजा पीता है क्या ?"

···करमा ने बाबू को सपने की बात सुनाकर अच्छा नहीं किया।

करमा उठकर ताखे पर रखे हुए आईने में अपना मुँह देखने लगा। उसने 'अ-जू-ऊ-ऊ-बा' कहकर देखा। छि:, उसके होंठ तीतर की चोंच की तरह···।

"का करमचन ? का बन रहा है ?"

···पानी पाँड़े ? यह पानी पाँड़े भला आदमी है। पुरानी जान-पहचान है इससे, करमा की। कई टिसन में संगत हुआ है। लेकिन, यह पैटमान 'लटपटिया' आदमी मालूम होता है। हर बात में पुच-पुचकर हँसनेवाला।

"करमचन, बाबू कौन जाति के हैं ?"

"क्यों ? बंगाली हैं।"

"भैया, बंगाली में भी साढ़े-बारह बरन के लोग होते हैं।"

"पानी पाँड़ेजी, सो तो मैं नहीं जानता। मगर बहुत गुनी-आदमी हैं। आपका नाम का मतलब निकालकर—चेहरा देखकर सब कुछ बता देंगे··· लीजिये, घण्टी पड़ गयी दुबज्जी गाड़ी की, और मेरी तरकारी अभी तक चढ़ी हुई है।"

पानी पाँड़े जाते-जाते कह गया, "थोड़ी तरकारी बचाकर रखना, करमचन!"

···घर कहाँ ? कौन जाति ? मनिहारी घाट के मस्तान बाबा का सिखाया हुआ जवाब, सभी जगह नहीं चलता—हरि के भजे सो हरि के होई ! मगर, हरि की भी जाति थी ! ···ले, यह घटही-गाड़ी का इञ्जन कैसे भेज दिया इस लाइन में आज ? संथाली-बाँसी जैसी पतली सीटी—सी-ई-ई !!

···ले, फक्का ! एक भी पसिंजर नहीं उतरा, इस गाड़ी से भी। काहे को इतना खर्चा करके रेल-कम्पनी ने यहाँ टिसन बनाया, करमा की बुद्धि में नहीं आता। फ़ायदा ? बस, नाम ही आमदपुरा है—आमदनी नदारद। सात दिन में दो टिकट कटे हैं और सिर्फ़ पाँच पसिंजर उतरे हैं, तिसमें दो बिना टिकट के। ···इतने दिन के बाद पन्द्रह बोरा बैंगन उस दिन बुक हुआ। पन्द्रह बैंगन देकर ही काम बना लिया, उस बूढ़े ने। ···उस बैंगनवाले की बोली-बानी अजीब थी। करमा से घुलकर गप करना चाहता था बूढ़ा। घर कहाँ है ? कौन जाति ? घर में कौन-कौन हैं ? ···करमा ने सभी सवालों का एक ही जवाब दिया था—ऊपर की ओर हाथ दिखलाकर ! बूढ़ा हँस पड़ा था। ···अजीब हँसी !

···घटही-गाड़ी ! सी-ई-ई-ई !!

करमा मनिहारीघाट टिसन में भी रहा है, तीन महीने तक एक बार, एक महीना दूसरी बार। ···मनिहारीघाट टिसन की बात निराली है। कहाँ मनिहारीघाट और कहाँ आमदपुरा का यह पिद्दी टिसन !

···नयी जगह में, नये टिसन में पहुँचकर आसपास के गाँवों में एकाध चक्कर घूमे-फिरे बिना करमा को न जाने 'कैसा-कैसा' लगता है। लगता है, अन्ध-कूप में पड़ा हुआ है। ···वह 'डिसटन-सिगल' के उस पार दूर-दूर तक खेत फैले हैं। ···वह काला जंगल···ताड़ का वह अकेला पेड़···आज बाबू को खिला-पिलाकर करमा निकलेगा। इस तरह बैठे रहने से उसके पेट का भात नहीं पचेगा। ···यदि गाँव-घर और खेत-मैदान में नहीं घूमता-फिरता, तो वह पेड़ पर चढ़ना कैसे सीखता ? तैरना कहाँ सीखता ?

···लखपतिया टिसन का नाम कितना 'जब्बड़' है ! मगर टिसन पर एक 'सत्तू-फरही' की भी दूकान नहीं। आस-पास में, पाँच कोस तक कोई गाँव नहीं। मगर, टिसन से पूरब जो दो पोखरे हैं, उन्हें कैसे भूल सकता है करमा ? आईना की तरह झलमलाता हुआ पानी। ···बैसाख महीने की दोपहरी में, घण्टों गले-भर पानी में नहाने का सुख ! मुंह से कहकर बताया नहीं जा सकता !

···मुदा, कदमपुरा—सचमुच कदमपुरा है। टिसन से शुरू करके गाँव तक हज़ारों कदम के पेड़ हैं। ···कदम की चटनी खाये एक युग हो गया !

···वारिसगंज टिसन, बीच कस्बा में है। बड़े-बड़े मालगोदाम, हज़ारों गाँठ पाट, धान-चावल के बोरे, कोयला-सीमेंट-चूना की ढेरी ! हमेशा हज़ारों लोगों की भीड़ ! करमा को किसी का चेहरा याद नहीं। ···लेकिन टिसन से सटे उत्तर की ओर मैदान में तम्बू डालकर रहनेवाले गदहा वाले मगहिया डोमों की याद हमेशा आती है। ···घाघरीवाली औरतें, हाथ में बड़े-बड़े कड़े, कान में झुमके···नंगे बच्चे, कान में गोल-गोल कुण्डलवाले मर्द ! ··· उनके मुर्गे ! उनके कुत्ते !

···बथनाहा टिसन के चारों ओर हज़ार घर बन गये हैं। कोई परतीत करेगा कि पाँच साल पहले बथनाहा टिसन पर दिन-दोपहर को टिटही बोलती थी !

···कितनी जगहों, कितने लोगों की याद आती है ! ···सोनबरसा के आम···कालूचक की मछलियाँ···भटोतर का दही···कुसियारगाँव का ऊख !

···मगर सबसे ज्यादा आती है मनिहारीघाट टिसन की याद। एक तरफ़ धरती, दूसरी ओर पानी। इधर रेलगाड़ी, उधर जहाज़। इस पार खेत-गाँव-मैदान, उस पार साहेबगंज-कजरोटिया का नीला पहाड़। नीला पानी—सादा बालू ! ···तीन एक, चार ! चार महीने तक तीसों दिन गंगा में नहाया है, करमा। चार 'जनम तक' पाप का कोई असर तो नहीं होना चाहिए ! इतना बढ़िया नाम शायद ही किसी टिसन का होगा—मनिहार। ···बलिहारी ! मछुवे जब नाव से मछलियाँ उतारते तो चमक के मारे करमा की आँखें चौंधिया जातीं।

···रात में, उधर जहाज़ चला जाता—धू-धू करता हुआ। इधर गाड़ी छकछकाती हुई कटिहार की ओर भागती। अजू साह की दूकान की 'झाँपी' बन्द हो जाती। तब घाट पर मस्तानबाबा की मण्डली जुटती।

···मस्तानबाबा कुली-कुल के थे। मनिहारीघाट पर ही कुली का काम करते थे। एक बार मन ऐसा उदास हो गया कि दाढ़ी और जटा बढ़ाकर बाबाजी हो गये। खंजड़ी बजाकर निरगुन गाने लगे। बाबा कहते—"घाट-

घाट का पानी पीकर देखा—सब फीका। एक गंगाजल मीठा···।" बाबा एक चिलम गाँजा पीकर पाँच किस्सा सुना देते। सब बेद-पुरान का किस्सा! करमा ने ग्यान की दो-चार बोली मनिहारीघाट पर ही सीखीं। मस्तानबाबा के सत्संग में। लेकिन, गाँजा में उसने कभी दम नहीं लगाया।···आज बाबू ने झुँझलाकर जब कहा, 'गाँजा-वाँजा पीते हो क्या'—तो करमा को मस्तानबाबा की याद आयी। बाबा कहते—हर जगह की अपनी खुशबू-बदबू होती है! ···इस आदमपुरा की गन्ध के मारे करमा को खाना-पीना नहीं रुचता।

···मस्तानबाबा को बाद देकर मनिहारीघाट की याद कभी नहीं आती।

करमा ने ताखे पर रखे आईने में फिर अपना मुखड़ा देखा। उसने आँखें अधमुँदी करके दाँत निकालकर हँसते हुए मस्तानबाबा के चेहरे की नक़ल उतारने की चेष्टा की—'मस्त रहो! ···सदा आँख-कान खोलकर रहो। ···धरती बोलती है। गाछ-बिरिच्छ भी अपने लोगों को पहचानते हैं।··· फसल को नाचते-गाते देखा है, कभी? रोते सुना है कभी अमावस्या की रात को? है···है···है—मस्त रहो···।'

···करमा को क्या पता कि बाबू पीछे खड़ा होकर सब तमाशा देख रहे हैं। बाबू ने अचरच से पूछा, "तुम जगे-जगे खड़ा होकर भी सपना देखता है? ···कहता है कि गाँजा नहीं पीता?"

सचमुच वह खड़ा-खड़ा सपना देखने लगा था। मस्तानबाबा का चेहरा बरगद के पेड़ की तरह बड़ा होता गया। उसकी मस्त हँसी आकाश में गूँजने लगी! गाँजे का धुआँ उड़ने लगा। गंगा की लहरें आयीं। दूर, जहाज़ का भोंपा सुनायी पड़ा—भों-ओं-ओं!

बाबू ने कहा, "खाना परोसो। देखूं, क्या बनाया है? तुमको लेकर तो भारी मुश्किल है···।"

मुँह का पहला कौर निगलकर बाबू करमा का मुँह ताकने लगे, "लेकिन, खाना तो बहुत बढ़िया बनाया है!"

खाते-खाते बाबू का मन-मिज़ाज एकदम बदल गया। फिर रात की तरह दिल खोलकर गप करने लगे, "खाना बनाना किसने सिखलाया तुमको? गोपाल बाबू की घरवाली ने?"

···गोपालबाबू की घरवाली? माने बौमा? वह बोला, "बौमा का मिजाज तो इतना खट्टा था कि बोली सुनकर कड़ाही का ताजा दूध फट जाये। वह किसी को क्या सिखावेगी? फूहड़ औरत!"

"और यह बात बनाना किसने सिखलाया तुमको?"

करमा को मस्तानबाबा की 'बानी' याद आयी, "बाबू, सिखलायेगा कौन? ···सहर सिखाये कोतवाली!"

"तुम्हारी बीवी को खूब आराम होगा!"

बाबू का मन-मिज़ाज इसी तरह ठीक रहा तो एक दिन करमा मस्तानबाबा का पूरा क़िस्सा सुनायेगा।

"बाबू, आज हमको ज़रा छुट्टी चाहिए।"

"छुट्टी! क्यों? कहाँ जायेगा?"

करमा ने एक ओर हाथ उठाते हुए कहा, "ज़रा उधर घूमने-फिरने···।"

पैटमानजी ने पुकारकर कहा, "करमा! बाबू को बोलो, 'कल' बोलता है।"

···तुम्हारी बीवी को खूब आराम होगा! ···करमा की बीवी! वारिसगंज टिसन···मगहिया डोमों के तम्बू···उठती उमेरवाली छौंडी··· नाक में नथिया···नाक और नथिया में जमे हुए काले मैले···पीले दाँतों में मिस्सी!!

करमा अपने हाथ का बना हुआ हलवा-पूरी उस छौंड़ी को नहीं खिला सका। एक दिन कागज़ की पुड़िया में ले गया। लेकिन वह पसीने से भीग गया। उसकी हिम्मत ही नहीं हुई।···यदि यह छौंड़िया चिल्लाने लगे कि तुम हमको चुरा-छिपाकर हलवा काहे खिलाता है? ···ओ, मइयो-यो-यो-यो-यो···!!

···बाबू हज़ार कहें, करमा का मन नहीं मानता कि उसका घर संथालपरगना या राँची की ओर कहीं होगा। मनिहारीघाट में दो-दो बार रह आया है, वह। उस पार के साहेबगंज-कजरौटिया के पहाड़ ने उसको अपनी ओर नहीं खींचा कभी! और वारिसगंज, कदमपुरा, कालूचक, लखपतिया का नाम सुनते ही उसके अन्दर कुछ झनझना उठता है। जाने-पहचाने, अचीन्हे, कितने लोगों के चेहरों की भीड़ लग जाती है! कितनी बातें—सुख-दुख की! खेत-खलिहान, पेड़ पौधे, नदी-पोखरे, चिरई-चुरमुन—सभी एकसाथ टानते है, करमा को!

···सात दिन से वह काला जंगल और ताड़ का पेड़ उसको इशारे से बुला रहा है। जंगल के ऊपर आसमान में तैरती हुई चील आकर करमा को क्यों पुकार जाती है? क्यों?

रेलवे-हाता पार करने के बाद भी जब कुत्ता नहीं लौटा तो करमा ने झिड़की दी, "तू कहाँ जायेगा ससुर? जहाँ जायेगा झाँव-झाँव करके कुत्ते दौड़ेंगे। ···जा! भाग! भाग!!"

कुत्ता रुककर करमा को देखने लगा। धनखेतों से गुज़रनेवाली पगडण्डी

पकड़कर करमा चल रहा है। धान की बालियाँ अभी फूटकर निकली नहीं हैं।···करमा को हेडक्वाटर के चौधरी बाबू की गर्भवती घरवाली की याद आयी। सुना है, डाक्टरनी ने अन्दर का फोटो लेकर देखा है—जुड़वाँ बच्चा है पेट में!

···इधर 'हथिया-नच्छत्तर' अच्छा 'झरा' था। खेतों में अभी भी पानी लगा हुआ है।···मछली?

···पानी में माँगुर मछलियों को देखकर करमा की देह अपने-आप बँध गयी। वह साँस रोककर चुपचाप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे खेत की मेंड़ पर चला गया। मछलियाँ छलमलायीं। आईने की तरह थिर पानी अचानक नाचने लगा।···करमा क्या करे?···उधर की मेंड़ से सटाकर एक 'छेंका' देकर पानी को उलीच दिया जाये तो···?

···है है—है है! साले! बन का गीदड़, जायेगा किधर? और छलमलाओ!···अरे, काँटा करमा को क्या मारता है? करमा नया शिकारी नहीं।

आठ माँगुर और एक गरई मछली! सभी काली मछलियाँ! कटिहार हाट में इसी का दाम बेखटके तीन रुपया ले लेता।···करमा ने गमछे में मछलियों को बाँध लिया। ऐसा 'सन्तोख' उसको कभी नहीं हुआ, इसके पहले। बहुत-बहुत मछली का शिकार किया उसने!

एक बूढ़ा भैंसवार मिला जो अपनी भैंस को खोज रहा था, "ए भाय! उधर किसी भैंस पर नजर पड़ी है?"

भैंसवार ने करमा से एक बीड़ी माँगी। उसको अचरज हुआ—कैसा आदमी है, न बीड़ी पीता है, न तम्बाकू खाता है। उसने नाराज होकर जिरह करना शुरू किया, "इधर कहाँ जाना है? गाँव में तुम्हारा कौन है? मछली कहाँ ले जा रहे हो?"

···ताड़ का पेड़ तो पीछे की ओर 'घसकता' जाता है! करमा ने देखा, गाँव आ गया। गाँव में कोई तमाशावाला आया है। बच्चे दौड़ रहे हैं। हाँ, भालू वाला ही है। डमरू की बोली सुनकर करमा ने समझ लिया था।

···गाँव की पहली गन्ध! गन्ध का पहला झोंका!

···गाँव का पहला आदमी। यह बूढ़ा गोभी को पानी से पटा रहा है। बाल सादा हो गये हैं, मगर पानी भरते समय बाँह में जवानी ऐंठती है। ···अरे, यह तो वही बूढ़ा है जो उस दिन बैंगन बुक कराने गया था और करमा से घुल-मिलकर गप करना चाहता था। करमा से खोद-खोदकर पूछता था—माय-बाप है नहीं या माय-बाप को छोड़कर भाग आये हो? ···ले, उसने भी करमा को पहचान लिया!

"क्या है, भाई! इधर किधर?"

"ऐसे ही। घूमने-फिरने!···आपका घर इसी गाँव में है?"

बूढ़ा हँसा। घनी मूँछें खिल गयीं।···बूढ़ा ठीक सत्तो बाबू टीटी के बाप की तरह हँसता है।

एक लाल साड़ीवाली लड़की हुक्के पर चिलम चढ़ाकर फूंकती हुई आयी। चिलम को फूंकते समय उसके दोनों गाल गोल हो गये थे। करमा को देखकर वह ठिठकी। फिर गोभी के खेत के बाड़े को पार करने लगी। बूढ़े ने कहा, "चल बेटी, दरवाजे पर ही हम लोग आ रहे हैं।"

बूढ़ा हाथ-पैर धोकर खेत से बाहर आया, "चलो!"

लड़की ने पूछा, "बाबा, यह कौन आदमी है?"

"भालू नचानेवाला आदमी।"

"धेत्त!"

करमा लजाया।···क्या उसका चेहरा-मोहरा भालू नचानेवाले जैसा है? बूढ़े ने पूछा, "तुम रिलिफिया बाबू के नौकर हो न?"

"नहीं, नौकर नहीं।···ऐसे ही साथ में रहता हूँ।"

"ऐसे ही? साथ में? तलब कितना मिलता है?"

"साथ में रहने पर तलब क्या मिलेगा?"

···बूढ़ा हुक्का पीना भूल गया। बोला, "बस? बेतलब का ताबेदार?"

बूढ़े ने आँगन की ओर मुँह करके कहा, "सरसतिया! जरा माय को भेज दो, यहाँ। एक कमाल का आदमी···।"

बूढ़ी टट्टी की आड़ में खड़ी थी। तुरत आयी। बूढ़े ने कहा, "जरा देखो, इस 'किल्लाठोंक-जवान' को। पेट भात पर खटता है।···क्यों जी, कपड़ा भी मिलता है?···इसी को कहते हैं—पेट-माधोराम मर्द!"

···आँगन में एक पतली खिलखिलाहट!···भालू नचानेवाला कहीं पड़ोस में ही तमाशा दिखा रहा है। डमरू के इस ताल पर भालू हाथ हिला-हिलाकर 'धब्बड़-धब्बड़' नाच रहा होगा—थुथना ऊँचा करके!···अच्छा जी भोलेराम, नाच तो खूब बनाया, तैंने। अब एक बार दिखला दे कि फूहड़ औरत गोद में बच्चा को सुलाकर किस तरह ऊँघती है!···वाहजी भोलेराम!

···सैकड़ों खिलखिलाहट!!

"तुम्हारा नाम क्या है जी?···करमचन? वाह, नाम तो खूब सगुनिया है। लेकिन काम? काम चूल्हचन?"

करमा ने लजाते हुए बात को मोड़ दिया, "आपके खेत का बैंगन बहुत

बढ़िया है। एकदम घी जैसा···।" बूढ़ा मुसकराने लगा।

और बूढ़ी की हँसी करमा की देह में जान डाल देती है। वह बोली, "बेचारे को दम तो लेने दो। तभी से रगेट रहे हो।"

"मछली है ? बाबू के लिए ले जाओगे ?"

"नहीं। ऐसे ही···रास्ते में शिकार···।"

"सरसतिया की माय ! मेहमान को चूड़ा भूनकर मछली की भाजी के साथ खिलाओ ! ···एक दिन दूसरे के हाथ की बनायी मछली खा लो जी !"

जलपान करते समय करमा ने सुना—कोई पूछ रही थी, "ए, सरसतिया की माय ! कहाँ का मेहमान है ?"

"कटिहार का।"

"कौन है ?"

"कुटुम ही है।"

"कटिहार में तुम्हारा कुटुम कब से रहने लगा ?"

"हाल से ही।"

···फिर एक खिलखिलाहट ! कई खिलखिलाहट ! ! ···चिलम फूंकते समय सरसतिया के गाल मोसम्बी की तरह गोल हो जाते हैं। बूढ़ी ने दुलार-भरे स्वर में पूछा, "अच्छा ए बबुआ ! तार के अन्दर से आदमी की बोली कैसे जाती है ? हमको जरा खुलासा करके समझा दो।"

चलते समय बूढ़ी ने धीरे से कहा, "बूढ़े की बात का बुरा न मानना। जब से जवान बेटा गया, तब से इसी तरह उखड़ी-उखड़ी बात करता है।···कलेजे का घाव···।"

"एक दिन फिर आना।"

"अपना ही घर समझना !"

लौटते समय करमा को लगा, तीन जोड़ी आँखें उसकी पीठ पर लगी हुई हैं। आँखें नहीं—डिसटन-सिगल, होम-सिगल और पैट-सिगल की लाल-लाल गोल-गोल रोशनी ! !

जिस खेत में करमा ने मछली का शिकार किया था उसकी मेंड़ पर एक ढोंढ़िया-साँप बैठा था। फों-फों करता हुआ भागा।···हद है! कुत्ता अभी तक बैठा उसकी राह देख रहा था ! खुशी के मारे नाचने लगा करमा को देखकर !

रेलवे-हाता में आकर करमा को लगा, बूढ़े ने उसको बनाकर ठग लिया। तीन रुपये की मोटी-मोटी मांगुर मछलियाँ एक चुटकी चूड़ा खिलाकर, चार खट्टी-मीठी बात सुनाकर···।

···करमा ने मछली की बात अपने पेट में रख ली। लेकिन बाबू तो पहले से ही सब कुछ जान लेनेवाला—'अगरजानी' है। दो हाथ दूर से ही बोले, "करमा, तुम्हारी देह से कच्ची मछली की बास आती है। मछली ले आये हो ?"

···करमा क्या जवाब दे अब ? जिन्दगी में पहली बार किसी बाबू के साथ उसने विश्वासघात किया है।···मछली देखकर बाबू ज़रूर नाचने लगते !

पन्द्रह दिन देखते-देखते ही बीत गया।

अभी, रात की गाड़ी से टिसन के सालटन-मास्टर बाबू आये हैं—बाल-बच्चों के साथ। पन्द्रह दिन से चुप फैमिली-क्वाटर में कुहराम मचा है। भोर की गाड़ी से ही करमा अपने बाबू के साथ हेड-क्वाटर लौट जायेगा।···इसके बाद, मनिहारीघाट ?

···न···आज रात भी करमा को नींद नहीं आयेगी। नहीं, अब वार्निश-चूने की गन्ध नहीं लगती।···बाबू तो मज़े में सो रहे हैं। बाबू, सचमुच में गोपाल बाबू जैसे हैं। न किसी जगह से तिल-भर मोह, न रत्ती-भर माया। ···करमा क्या करे ? ऐसा तो कभी नहीं हुआ।···'एक दिन फिर आना। अपना ही घर समझना।···कुटुम है···पेट-माधोराम मर्द !'

···अचानक करमा को एक अजीब-सी गन्ध लगी। वह उठा। किधर से यह गन्ध आ रही है ? उसने धीरे से प्लेटफ़ार्म पार किया। चुपचाप सूँघता हुआ आगे बढ़ता गया।···रेलवे-लाइन पर पैर पड़ते ही सभी सिगल—होम, डिसटण्ट और पैट—ज़ोर-ज़ोर से बिगुल फूंकने लगे।···फैमिली-क्वाटर से एक औरत चिल्लाने लगी—'चो-ओ-ओ-र !' वह भागा। एक इन्जिन उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है।···मगहिया डोम की छौंड़ी ?···तम्बू में वह छिप गया।···सरसतिया खिलखिलाकर हँसती है। उसके झबरे केश, बेनहाई हुई देह की गन्ध, करमा के प्राण में समा गयी।···वह डरकर सरसतिया की गोद में···नहीं, उसकी बूढ़ी माँ की गोद में अपना मुँह छिपाता है।···रेल और जहाज़ के भोंपे एकसाथ बजते हैं। सिगल की लाल-लाल रोशनी···।

"करमा, उठ ! करमा, सामान बाहर निकालो !"

···करमा एक गन्ध के समुद्र में डूबा हुआ है। उसने उठकर कुरता पहना। बाबू का बक्सा बाहर निकाला। पानी-पाँड़े ने 'कहा-सुना माफ करना' कहा। करमा डूबा रहा !

···गाड़ी आयी। बाबू गाड़ी में बैठे। करमा ने बक्सा चढ़ा दिया।···

वह 'सरवेण्ट-दर्जा' में बैठेगा। बाबू ने पूछा, "सब कुछ चढ़ा दिया तो ? कुछ छूट तो नहीं गया ?"···नहीं, कुछ छूटा नहीं है।···गाड़ी ने सीटी दी। करमा ने देखा, प्लेटफ़ार्म पर बैठा हुआ कुत्ता उसकी ओर देखकर कूं-कूं कर रहा है।···बेचैन हो गया कुत्ता !

"बाबू ?"

"क्या है ?"

"मैं नहीं जाऊँगा।" करमा चलती गाड़ी से उतर गया। धरती पर पैर रखते ही ठोकर लगी। लेकिन सँभल गया।

तीसरी कसम, उर्फ मारे गये गुलफ़ाम

हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है।···

पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हिरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कण्ट्रोल के ज़माने में चोरबाज़ारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में !···

कण्ट्रोल का जमाना ! हिरामन कभी भूल सकता है उस ज़माने को ! एक बार चार खेप सीमेण्ट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबनी से बिराटनगर पहुँचाने के बाद हिरामन का कलेजा पोख्ता हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी खुद करते, अपनी भाषा में···।

गाड़ी पकड़ी गयी पाँचवीं बार, सीमा के इस पार तराई में।

महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की-मुक्की लगाकर छिपा हुआ था। दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लम्बी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज़ होती है, हिरामन जानता है। एक घण्टे के लिए आदमी अन्धा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाये आँखों पर ! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज़ —'ऐ-य ! गाड़ी रोको ! साले, गोली मार देंगे ! ···"

बीसों गाड़ियाँ एकसाथ कचकचाकर रुक गयीं। हिरामन ने पहले ही कहा था, "यह बीस विषावेगा !" दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीमजी पर रोशनी डालकर पिशाची हँसी हँसे—"हा-हा-हा ! मुँड़ीमजी-ई-ई-ई ! ही-ही-ही !···ऐ-य, साला गाड़ीवान, मुँह क्या देखता है रे-ए-ए ! कम्बल हटाओ इस बोरे के मुँह पर से !" हाथ की छोटी लाठी से मुनीमजी के पेट में खोंचा मारते हुए कहा था, "इस बोरे को ! स-स्साला ! ···"

बहुत पुरानी अखज-अदावत होगी दारोगा साहब और मुनीमजी में। नहीं तो उतना रुपया कबूलने पर भी पुलिस-दारोगा का मन न डोले भला ! चार हज़ार तो गाड़ी पर बैठा ही दे रहा है। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। "पाँच हज़ार !" फिर खोंचा—"उतरो पहले।···"

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतारकर दारोगा ने उसकी आँखों पर रोशनी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क से बीस-पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गये। गाड़ीवान और गाड़ियों पर पाँच-पाँच बन्दूकवाले सिपाहियों का पहरा !···हिरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं।··· जेल ? हिरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे—भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जायेंगे। भैया और भौजी को वह मुँह नहीं दिखा सकेगा कभी।···नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूँज गयी—एक-दो-तीन ! दारोगा और मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

हिरामन की गाड़ी के पास तैनात सिपाही ने अपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी आवाज़ में पूछा, "का हो ? मामला गोल होखी का ?" फिर खैनी-तम्बाकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया।···

एक-दो तीन ! तीन-चार गाड़ियों की आड़। हिरामन ने फैसला कर लिया। उसने धीरे से अपने बैलों के गले की रस्सियाँ खोल लीं। गाड़ी पर बैठे-बैठे दोनों को जुड़वाँ बाँध दिया। बैल समझ गये उन्हें क्या करना है। हिरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बाँस की टिकटी लगाकर बैलों के कन्धों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुदगुदी लगा दी और मन-ही-मन बोला, 'चलो भैयन, जान बचेगी तो ऐसी-ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेगी।' ···एक-दो-तीन ! नौ-दो-ग्यारह !···

गाड़ियों की आड़ में सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फैली हुई थी। दम साधकर तीनों प्राणियों ने झाड़ी को पार किया—बेखटक, बे-आहट ! फिर एक ले, दो ले— दुलकी चाल ! दोनों बैल सीना तानकर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गये। राह सूँघते, नदी-नाला पार करते हुए भागे पूँछ उठाकर। पीछे-पीछे हिरामन। रात-भर भागते रहे थे तीनों जन।···

घर पहुँचकर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हिरामन। होश में आते ही

उसने कान पकड़कर कसम खायी थी—अब कभी ऐसी चीज़ों की लदनी नहीं लादेंगे। चोरबाज़ारी का माल? तोबा, तोबा!···पता नहीं मुनीमजी का क्या हुआ! भगवान जाने उसकी सगड़ गाड़ी का क्या हुआ! असली इस्पात लोहे की धुरी थी। दोनों पहिये तो नहीं, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन डोरियों के फुंदने बड़े जतन से गूंथे गये थे।···

दो कसमें खायी हैं उसने। एक चोरबाज़ारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी—बांस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है—'चोरी-चमारीवाली चीज़ तो नहीं?' और, बाँस? बांस लादने के लिए पचास रुपये भी दे कोई, हिरामन की गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरे की गाड़ी देखे।

बाँस लदी हुई गाड़ी! गाड़ी से चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा। सो बेकाबूवाली लदनी और खरैहिया। शहरवाली बात! तिस पर बाँस का अगुआ पकड़कर चलनेवाला भाड़ेदार का महाभकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गयी। जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, जब तक घोड़ा-गाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गयी। घोड़ा-गाड़ीवाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी!···

बाँस की लदनी ही नहीं, हिरामन ने खरैहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी। और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार!···कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधीदारी पर जोता। आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का। हिस्स! गाड़ीवानी करो मुफ्त! आधीदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते। पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवायी है।

देवी मैया भला करें उस सरकस-कम्पनी के बाघ का। पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोनेवाले दोनों घोड़े मर गये। चम्पानगर से फारबिस-गंज मेला आने के समय सरकस-कम्पनी के मैनेजर ने गाड़ीवान-पट्टी में ऐलान करके कहा—"सौ रुपया भाड़ा मिलेगा!" एक-दो गाड़ीवान राज़ी हुए। लेकिन, उनके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिकरने लगे—बाँ-आँ! रस्सी तुड़ाकर भागे। हिरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा, "देखो भैयन, ऐसा मौका फिर हाथ न आयेगा। यही है मौका अपनी गाड़ी बनवाने का। नहीं तो फिर आधेदारी···। अरे, पिंजड़े में बन्द बाघ का क्या डर? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुई बाघों को देख चुके हो। फिर पीठ पर मैं तो हूँ।···"

गाड़ीवानों के दल में तालियाँ पटपटा उठी थीं एक साथ। सभी की

लाज रख ली हिरामन के बैलों ने। हुमककर आगे बढ़ गये और बाघगाड़ी में जुट गये—एक-एक करके। सिर्फ़ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर-सा पेशाब किया। हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी की तरह नकबन्धन लगाये बिना बघाइन गन्ध बरदास्त नहीं कर सकता कोई।

···बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हिरामन ने। कभी ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में। आज रह-रहकर उसकी गाड़ी में चम्पा का फूल महक उठता है। पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अँगोछे से पीठ झाड़ लेता है।

हिरामन को लगता है, दो वर्ष से चम्पानगर मेले की भगवती मैया उस पर प्रसन्न है। पिछले साल बाघगाड़ी जुट गयी। नकद एक सौ रुपये भाड़े के अलावा बुताद, चाह-बिस्कुट और रास्ते-भर बन्दर-भालू और जोकर का तमाशा देखा सो फोकट में!

और, इस बार यह जनानी सवारी। औरत है या चम्पा का फूल! जब से गाड़ी मह-मह महक रही है।

कच्ची सड़क के एक छोटे-से खड्ड में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिचकोला खा गया। हिरामन की गाड़ी से एक हल्की 'सिस' की आवाज़ आयी। हिरामन ने दाहिने बैल को दुआली से पीटते हुए कहा, "साला! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या?"

"अहा! मारो मत!"

अनदेखी औरत की आवाज़ ने हिरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली!

मथुरामोहन नौटंकी कम्पनी में लैला बननेवाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला! लेकिन हिरामन की बात निराली है। उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी-थियेटर या बाय-स्कोप सिनेमा नहीं देखा। लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी। देखने की क्या बात! सो मेला टूटने के पन्द्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देखकर उसके मन में खटका अवश्य लगा था। बक्सा ढोनेवाले नौकर से गाड़ी-भाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नीवाली ने सिर हिलाकर मना कर दिया। हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा, "क्यों भैया, कोई चोरी-चमारी का माल-वाल तो नहीं?" हिरामन को फिर अचरज हुआ। बक्सा ढोनेवाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हाँकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया। हिरामन को मेले में तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी की काली साड़ी की

याद आयी थी।···

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हाँके !

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है। दूसरे रह-रहकर चम्पा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में। बैलों को डाँटो तो 'इस-बिस' करने लगती है उसकी सवारी।···उसकी सवारी ! औरत अकेली, तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी नहीं ! आवाज़ सुनने के बाद वह बार-बार मुड़कर टप्पर में एक नजर डाल देता है; अँगोछे से पीठ झाड़ता है।···भगवान जाने क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में ! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गया। सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा। हिरामन को सब कुछ रहस्यमय—अजगुत-अजगुत— लग रहा है। सामने चम्पानगर से सिंधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान ! ···कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं ?

हिरामन की सवारी ने करवट ली। चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते-चीखते रुक गया—अरे बाप ! ई तो परी है !

परी की आँखें खुल गयीं। हिरामन ने सामने सड़क की ओर मुँह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू से सटाकर टि-टि-टि-टि आवाज़ निकालता है। हिरामन की जीभ न जाने कब से सूखकर लकड़ी-जैसी हो गयी थी !

"भैया, तुम्हारा नाम क्या है ?"

हू-ब-हू फेनूगिलास !···हिरामन के रोम-रोम बज उठे। मुँह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

"मेरा नाम ! ···नाम मेरा है हिरामन !"

उसकी सवारी मुस्कराती है।···मुस्कराहट में खुशबू है।

"तब तो मीता कहूँगी, भैया नहीं।— मेरा नाम भी हीरा है।"

"इस्स !" हिरामन को परतीत नहीं, "मर्द और औरत के नाम में फ़र्क होता है।"

"हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।"

कहाँ हिरामन और कहाँ हीराबाई, बहुत फ़र्क है !

हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी—"कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोस मंज़िल कटेगी क्या ? इस बायें नाटे के पेट में शैतानी भरा है।" हिरामन ने बायें बैल को दुआली की हल्की झड़प दी।

'मारो मत; धीरे-धीरे चलने दो। जल्दी क्या है !"

हिरामन के सामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कहकर 'गप' करे

हीराबाई से ? 'तोहें' कहे या 'अहाँ' ? उसकी भाषा में बड़ों को 'अहाँ' अर्थात् 'आप' कहकर सम्बोधित किया जाता है, कचराही बोली में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है, दिल-खोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।

आसिन-कातिक के भोर में छा जानेवाले कुहासे से हिरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह सड़क भूलकर भटक चुका है। किन्तु आज के भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन है। नदी के किनारे धन-खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गन्ध आती है। पर्व-पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगन्ध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चम्पा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है।···जै भगवती !

हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी···मीता··· हीराबाई की आँखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही हैं। हिरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। बोला, "बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है ?"

हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है।

चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल-बच्चे-वाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही गौने के पहले ही दुलहिन मर गयी। हिरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं।···दूसरी शादी ? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की ज़िद, कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवायेगी। कुमारी का मतलब हुआ पाँच-सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा-कानून ? कोई लड़कीवाला दोब्याहू को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन-सत्त करके बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती ! ···अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाये ! ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई ! और सब कुछ छूट जाये, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन।

हीराबाई ने हिरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा, "आपका घर कौन जिल्ला में पड़ता है ?" कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हँसी छूटी, तो बैल भड़क उठे। हिरामन हँसते समय सिर नीचा कर

लेता है। हँसी बन्द होने पर उसने कहा, "वाह रे कानपुर ! तब तो नाकपुर भी होगा ?" और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है, तो वह हँसते-हँसते दुहरा हो गया।

"वाह रे दुनिया ! क्या-क्या नाम होता है ! कानपुर, नाकपुर !" हिरामन ने हीराबाई के कान के फूल को ग़ौर से देखा। नाक की नकछवि के नग देखकर सिहर उठा — लहू की बूँद !

हिरामन ने हीराबाई का नाम नहीं सुना कभी। नौटंकी कम्पनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है।···कम्पनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कम्पनी की मालकिन, अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा-पानी देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हिरामन के बैलों को भी डबलरोटी-बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हिरामन होशियार है। कुहासा छँटते ही अपनी चादर से टप्पर में परदा कर दिया —"बस दो घण्टा ! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूप आप बर्दास्त न कर सकियेगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दुपहरिया काटकर···।"

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देखकर वह सतर्क हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगाकर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा, "मेला टूट रहा है क्या भाई ?"

हिरामन ने जवाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उसकी गाड़ी पर 'बिदागी' (नैहर या ससुराल जाती हुई लड़की) है। न जाने किस गाँव का नाम बता दिया हिरामन ने !

"छत्तापुर-पचीरा कहाँ है ?"

"कहीं हो, यह लेकर आप क्या करिएगा ?" हिरामन अपनी चतुराई पर हँसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।

हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही है।···मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्हीं-चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने, छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं कौड़ियों की पाँत।

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखलायी पड़ते हैं। हिरामन ने परदे को ज़रा सरकाते हुए कहा, "देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ हैं और एक···उस फूल का क्या नाम है, आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है, वैसा ही; खूब महकता है; दो कोस दूर तक गन्ध जाती है; उस फूल को खमीरा तम्बाकू में डालकर पीते भी हैं लोग।"

"और उस अमराई की आड़ से कई मकान दिखायी पड़ते हैं, वहाँ कोई गाँव है या मन्दिर ?"

हिरामन ने बीड़ी सुलगने के पहले पूछा, "बीड़ी पीयें ? आपको गन्ध तो नहीं लगेगी ?···वही है नामलगर ड्योढ़ी। जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उसी का दियाद-गोतिया है।···जा रे जमाना !"

हिरामन ने 'जा रे जमाना' कहकर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टप्पर के परदे को तिरछे खोंस दिया।···हीराबाई की दन्त-पंक्ति।

"कौन जमाना ?" ठुड्डी पर हाथ रखकर साग्रह बोली।

"नामलगर ड्योढ़ी का जमाना ! क्या था और क्या-से-क्या हो गया !"

हिरामन गप रसाने का भेद जानता है। हीराबाई बोली, "तुमने देखा था वह जमाना ?"

"देखा नहीं, सुना है।···राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला, देवता आखिर देवता है। है या नहीं ? इन्दरासन छोड़कर मिरतूभुवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई ! सूरजमुखी फूल की तरह माथे के पास तेज खिला रहता। लेकिन नज़र का फेर, किसी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के, हवागाड़ी से आये थे। लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लाटनी ने। सुरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी—ए मैन राजा साहब, सुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है।"

हिरामन ने लाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम-फैट-लैट किया। हीराबाई दिल खोलकर हँसी।···हँसते समय उसकी सारी देह दुलकती है।

हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली। तब हिरामन को लगा कि ···लगा कि···

"तब ? उसके बाद क्या हुआ मीता ?"

"इस्स ! कथ्था सुनने का बड़ा सौक है आपको ?···लेकिन, काला आदमी, राजा क्या महाराजा भी हो जाये, रहेगा काला आदमी ही। साहेब के जैसा अक्किल कहाँ से पायेगा ! हँसकर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार-बार सपना देने लगा देवता ! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं रहेंगे तुम्हारे यहाँ। इसके बाद देवता का खेल शुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दन्तार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग···।"

"पटपटांग क्या है ?"

हिरामन का मन पल-पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खिल रहा है, उसको लगता है।···उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आख़िर देवता है !

"पटपटांग ! धन-दौलत, माल-मवेसी सब साफ ! देवता इन्दरासन चला गया।"

हीराबाई ने ओझल होते हुए मन्दिर के कँगूरे की ओर देखकर लम्बी साँस ली।

"लेकिन देवता ने जाते-जाते कहा, इस राज में कभी एक छोड़कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे हैं, गुन छोड़ जाते हैं। देवता के साथ सभी देव-देवी चले गये, सिर्फ सरोसती मैया रह गयी। उसी का मन्दिर है।"

देसी घोड़े पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देखकर हिरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। बैलों को ललकारकर बिदेसिया नाच का बन्दना गीत गाने लगा—

"जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी;
हमरा पर होखू सहाई हे मैया, हमरा पर होखू सहाई !"

घोड़लद्दे बनियों से हिरामन ने हुलसकर पूछा, "क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन ?"

लँगड़े घोड़ेवाले बनिये ने बटगमनी जवाब दिया—"नीचे सताइस-अठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल, वैसा भाव।"

जवान बनिये ने पूछा, "मेले का क्या हाल-चाल है, भाई ? कौन नौटंकी कम्पनी का खेल हो रहा है, रौता कम्पनी या मथुरामोहन ?"

"मेले का हाल मेलावाला जाने !" हिरामन ने फिर छत्तापुर-पचीरा का नाम लिया।

सूरज दो बाँस ऊपर आ गया था। हिरामन अपने बैलों से बात करने लगा—"एक कोस ज़मीन ! ज़रा दम बाँधकर चलो। प्यास की बेला हो गयी न ! याद है, उस बार तेगछिया के पास सरकस कम्पनी के जोकर और बन्दर नचानेवाले साहब में झगड़ा हो गया था। जोकरवा ठीक बन्दर की तरह दाँत किटकिटाकर किकियाने लगा था···न जाने किस-किस देस-मुलुक के आदमी आते हैं !"

हिरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबाई एक कागज़ के टुकड़े पर आँख गड़ाकर बैठी है। हिरामन का मन आज हल्के सुर में बँधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले,

बिदेसिया, बलवाही, छोकरा-नाचवाले एक-से-एक गज़ल-खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू-भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग ! जा रे जमाना ! छोकरा-नाच के गीत की याद आयी हिरामन को—

"सजनवा वैरी हो ग'य हमारो ! सजनवा···!
अरे, चिठिया हो तो सब कोई बाँचे; चिठिया हो तो···
हाय ! करमवा, होय करमवा···
कोई न बाँचे हमारो, सजनवा···हो करमवा···!"

गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल देकर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा-नाच के मनुवाँ नटुवा का मुँह हीराबाई जैसा ही था।···कहाँ चला गया वह ज़माना ? हर महीने गाँव में नाचवाले आते थे। हिरामन ने छोकरा-नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली-ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हिरामन पर माँ सरोसती सहाय हैं, लगता है। हीराबाई बोली, "वाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम !"

हिरामन का मुँह लाल हो गया। वह सिर नीचा करके हँसने लगा।

आज तेगछिया पर रहनेवाले महावीर स्वामी भी सहाय हैं हिरामन पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नहीं। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती है यहाँ। सिर्फ़ एक साइकिलवाला बैठकर सुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को सुमरकर हिरामन ने गाड़ी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हिरामन ने पहली बार आँखों से बात की हीराबाई से—साइकिलवाला इधर ही टकटकी लगाकर देख रहा है।

बैलों के खोलने के पहले बाँस की टिकटी लगाकर गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकिलवाले की ओर बार-बार घूरते हुए पूछा, "कहाँ जाना है ? मेला ? कहाँ से आना हो रहा है ? बिसनपुर से ? बस, इतनी ही दूर में थसथसाकर थक गये ?—जा रे जवानी !"

साइकिलवाला दुबला-पतला नौजवान मिनमिनाकर कुछ बोला और बीड़ी सुलगाकर उठ खड़ा हुआ।

हिरामन दुनिया-भर की निगाह से बचाकर रखना चाहता है हीराबाई को। उसने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देख लिया—कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं।

कजरी नदी की दुबली-पतली धारा तेगछिया के पास आकर पूरब की ओर मुड़ गयी है। हीराबाई पानी में बैठी हुई भैंसों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही।

हिरामन बोला, "जाइए, घाट पर मुँह-हाथ धो आइए !"

हीराबाई गाड़ी से नीचे उतरी। हिरामन का कलेजा धड़क उठा।··· नहीं, नहीं ! पाँव सीधे हैं, टेढ़े नहीं। लेकिन, तलुवा इतना लाल क्यों है ? हीराबाई घाट की ओर चली गयी, गाँव की बहू-बेटी की तरह सिर नीचा करके धीरे-धीरे। कौन कहेगा कि कम्पनी की औरत है ! ···औरत नहीं, लड़की। शायद कुमारी ही है।

हिरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया। उसने टप्पर में झाँककर देखा। एक बार इधर-उधर देखकर हीराबाई के तकिये पर हाथ रख दिया। फिर तकिये पर केहुनी डालकर झुक गया, झुकता गया ! खुशबू उसकी देह में समा गयी। तकिये के गिलाफ पर कढ़े फूलों को उँगलियों से छूकर उसने सूँघा, हाय रे हाय ! इतनी सुगन्ध ! हिरामन को लगा, एक साथ पाँच चिलम गाँजा फूँककर वह उठा है। हीराबाई के छोटे आईने में उसने अपना मुँह देखा। आँखें उसकी इतनी लाल क्यों है ?

हीराबाई लौटकर आयी तो उसने हँसकर कहा, "अब आप गाड़ी का पहरा दीजिए, मैं आता हूँ तुरत।"

हिरामन ने अपनी सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़कर कन्धे पर लिया और हाथ में बालटी लटकाकर चला। उसके बैलों ने बारी-बारी से 'हुँक-हुँक' करके कुछ कहा। हिरामन ने जाते-जाते उलट-कर कहा, "हाँ, हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौटकर आता हूँ तो घास दूँगा, बदमासी मत करो !"

बैलों ने कान हिलाये।

नहा-धोकर कब लौटा हिरामन, हीराबाई को नहीं मालूम। कजरी की धारा को देखते-देखते उसकी आँखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आयी थी। हिरामन पास के गाँव से जलपान के लिए दही-चूड़ा-चीनी ले आया है।

"उठिए, नींद तोड़िए ! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए !"

हीराबाई आँख खोलकर अचरज में पड़ गयी। एक हाथ में मिट्टी के नये बरतन में दही, केले के पत्ते। दूसरे हाथ में बालटी-भर पानी। आँखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध !

"इतनी चीजें कहाँ से ले आये ?"

"इस गाँव का दही नामी है।···चाह तो फारबिसगंज जाकर ही पाइएगा।"

हिरामन की देह की गुदगुदी मिट गयी। हीराबाई ने कहा, "तुम भी पत्तल बिछाओ !···क्यों ? तुम नहीं खाओगे तो समेटकर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊँगी।"

"इस्स !" हिरामन लजाकर बोला, "अच्छी बात ! आप खा लीजिए पहले।"

"पहले-पीछे क्या ? तुम भी बैठो।"

हिरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकालकर दिया। इस्स ! धन्न है, धन्न है ! हिरामन ने देखा, भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल होंठों पर गोरस का परस ! ···पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है ?

दिन ढल गया।

टप्पर में सोयी हीराबाई और जमीन पर दरी बिछाकर सोये हिरामन की नींद एक ही साथ खुली।···मेले की ओर जानेवाली गाड़ियाँ तेगछिया के पास रुकी हैं। बच्चे कचर-पचर कर रहे हैं।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। टप्पर के अन्दर झाँककर इशारे से कहा—दिन ढल गया ! गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हाँकते हुए बोला, "सिरपुर बाज़ार के इसपिताल की डागडरनी हैं। रोगी देखने जा रही हैं। पास ही कुड़मागाम।"

हीराबाई छत्तापुर-पचीरा का नाम भूल गयी। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आयी तो उसने हँसकर पूछा, "पत्तापुर-छपीरा ?"

हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये हिरामन के—"पत्तापुर-छपीरा ! हा-हा ! वे लोग छत्तापुर-पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता ! ही-ही-ही !"

हीराबाई मुस्कराती हुई गाँव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदे-वाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा-बजाकर रटी हुई पंक्तियाँ दुहराने लगे—

"लाली-लाली डोलिया में
लाली रे दुलहिनिया
पान खाये···!"

हिरामन हँसा।···दुलहिनिया···लाली-लाली डोलिया ! दुलहिनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी में मुँह पोंछती है। ओ दुलहिनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती आइयो। लाख बरिस तेरा दुलहा जीये ! ···कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हिरामन का ! ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने ! वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा

है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजाकर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, 'कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जायेगी ?' उसकी दुलहिन डोली का परदा थोड़ा सरकाकर देखती है। और भी कितनेसपने···

गाँव से बाहर निकलकर उसने कनखियों से टप्पर के अन्दर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किसी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा—

"सजन रे झूठ मति बोलो, खुदा के पास जाना है।
नहीं हाथी, नहीं घोड़ा, नहीं गाड़ी—
वहाँ पैदल ही जाना है। सजन रे···।"

हीराबाई ने पूछा, "क्यों मीता ? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या ?"

हिरामन अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डालकर बात करता है। कम्पनी की औरत भी ऐसी होती है ? सरकस कम्पनी की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई ! गाँव की बोली में गीत सुनना चाहती है। वह खुलकर मुस्कराया —"गाँव की बोली आप समझिएगा ?"

"हूँ ऊं-ऊं !" हीराबाई ने गर्दन हिलायी। कान के झुमके हिल गये।

हिरामन कुछ देर तक बैलों को हाँकता रहा चुपचाप। फिर बोला, "गीत ज़रूर ही सुनिएगा ? नहीं मानिएगा ?···इस्स ! इतना सौक गाँव का गीत सुनने का है आपको ! तब लीक छोड़नी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई !" हिरामन ने बायें बैल की रस्सी खींचकर दाहिने को लीक से बाहर किया और बोला, "हरिपुर होकर नहीं जायेंगे तब।"

चालू लीक को काटते देखकर हिरामन की गाड़ी के पीछेवाले गाड़ीवान ने चिल्लाकर पूछा, "काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़कर बेलीक कहाँ उधर ?"

हिरामन ने हवा में दुआली घुमाते हुए जवाब दिया—"कहाँ है बेलीकी ? वह सड़क ननकपुर तो नहीं जायेगी।" फिर अपने-आप बड़बड़ाया, "इस मुलुक के लोगों की यही आदत बुरी है। राह चलते एक सौ जिरह करेंगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ।···देहाती भुच्च सब !"

ननकपुर की सड़क पर गाड़ी लाकर हिरामन ने बैलों की रस्सी ढीली कर दी। बैलों ने दुलकी चाल छोड़कर कदमचाल पकड़ी।

हीराबाई ने देखा, सचमुच ननकपुर की सड़क बड़ी सूनी है। हिरामन उसकी आँखों की बोली समझता है—"घबराने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जायेगी, राह-घाट के लोग बहुत अच्छे हैं।···एक घड़ी रात तक हम लोग पहुँच जायेंगे।"

हीराबाई को फारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं। हिरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया कि डर-भय की कोई बात ही नहीं उठती है मन में। हिरामन ने पहले जी-भर मुस्करा लिया। कौन गीत गाये वह ! हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है···इस्स ! महुआ घटवारिन ? वह बोला, "अच्छा, जब आपको इतना सौक है तो सुनिए महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कथ्था भी है।"

···कितने दिनों के बाद भगवती ने यह हौसला भी पूरा कर दिया। जै भगवती ! आज हिरामन अपने मन को खलास कर लेगा। वह हीराबाई की थमी हुई मुस्कराहट को देखता रहा।

"सुनिए ! आज भी परमार नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घाट हैं। इसी मुलुक की थी महुआ ! थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवन्ती में एक थी। उसका बाप दारू-ताड़ी पीकर दिन-रात बेहोस पड़ा रहता। उसकी सौतेली माँ साच्छात राकसनी ! बहुत बड़ी नजर-चालक। रात में गाँजा-दारू अफीम चुराकर बेचनेवाले से लेकर तरह-तरह के लोगों से उसकी जान-पहचान थी। सबसे घुट्टा-भर हेल-मेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराते-कराते उसकी हड्डी निकाल दी थी राकसनी ने। जवान हो गयी, कहीं शादी-ब्याह की बात भी नहीं चलायी। एक रात की बात सुनिए !"

हिरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला साफ किया—

'हे अ-अ-अ सावना-भादवा के-र-उमड़ल नदिया-गे मैं-यो-ओ-ओ,
मैयो गे रैनि भयावनि-हे-ए-ए-ए;
तड़का-तड़के धड़के करेज-आ-आ मोरा,
कि हमहूँ जे बार-नान्ही रे-ए-ए···।"

ओ माँ ! सावन-भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी-क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊँ घाट पर ? सो भी एक परदेशी राही-बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए ! सत-माँ ने अपनी बज्जर-किवाड़ी बन्द कर ली। आसमान में मेघ हड़बड़ा उठे और हरहराकर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी, अपनी माँ को याद करके। आज उसकी माँ रहती तो ऐसे दुरदिन में कलेजे से सटाकर रखती अपनी महुआ बेटी को। गे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए तुमने कोख में रखा था ? महुआ अपनी माँ पर गुस्सायी—क्यों वह अकेली मर गयी, जी-भर कोसती हुई बोली।

हिरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिये पर केहुनी गड़ाकर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है।··· खोयी हुई सूरत कैसी भोली लगती है !

हिरामन ने गले में कँपकँपी पैदा की—

"हूँ-ऊँ-ऊँ-रे डाइनियाँ मैयो मोरी-ई-ई,
नोनवा चटाई काहे नाहि मारलि सौरी-घर-अ-अ।
एहि दिनवाँ खातिर छिनरो धिया
तेंहू पोसलि कि नेनू-दूध उटगन···।"

हिरामन ने दम लेते हुए पूछा, "भाखा भी समझती हैं कुछ या खाली गीत ही सुनती हैं ?"

हीरा बोली, "समझती हूँ। उटगन माने उबटन—जो देह में लगाते हैं।"

हिरामन ने विस्मित होकर कहा, "इस्स !"···सो रोने-धोने से क्या होय ! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का। बाल पकड़कर घसीटता हुआ नाव पर चढ़ा और माँझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बाँधो ! पालवाली नाव परवाली चिड़िया की तरह उड़ चली। रात-भर महुआ रोती-छटपटाती रही। सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया-धमकाया—'चुप रहो, नहीं तो उठाकर पानी में फेंक देंगे।' बस, महुआ को बात सूझ गयी। भोर का तारा मेघ की आड़ से जरा बाहर आया, फिर छिप गया। इधर महुआ भी छपाक् से कूद पड़ी पानी में।···सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था। महुआ की पीठ पर वह भी कूदा। उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, सो भी भरी भादों की नदी में। महुआ असल घटवारिन की बेटी थी। मछली भी भला थकती है पानी में ! सफरी मछली-जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है। और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार-पुकारकर कहता है—'महुआ ज़रा थमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा साथी हूँ। ज़िन्दगी-भर साथ रहेंगे हम लोग।' लेकिन···।

हिरामन का बहुत प्रिय गीत है यह। महुआ घटवारिन गाते समय उसके सामने सावन-भादों की नदी उमड़ने लगती है; अमावस्या की रात और घने बादलों में रह-रहकर बिजली चमक उठती है। उसी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी-कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है। सफरी मछली की चाल और तेज हो जाती है। उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है। महुआ कोई बात नहीं सुनती। परतीत करती नहीं। उलटकर देखती भी नहीं। और वह थक गया है, तैरते-तैरते।···

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया। खुद ही पकड़ में आ गयी है। उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गयी है। पन्द्रह-बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए

उसके मन को किनारा मिल गया है। आनन्द के आँसू कोई रोक नहीं मानते।···

उसने हीराबाई से अपनी गीली आँखें चुराने की कोशिश की। किन्तु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब से सब कुछ देख रही थी। हिरामन ने अपनी काँपती हुई बोली को काबू में लाकर बैलों को झिड़की दी—"इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं। लगता है, सौ मन बोझ लाद दिया किसी ने।"

हीराबाई लम्बी साँस लेती है। हिरामन के अंग-अंग में उमंग समा जाती है।

"तुम तो उस्ताद हो मीता !"

"इस्स !"

आसिन-कातिक का सूरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है। सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुँचना है, हिरामन अपने बैलों को समझा रहा है—"कदम खोलकर और कलेजा बाँधकर चलो···ए···छि: छि: ! बढ़के भैयन ! ले-ले-ले-ए हे-य !"

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा। हर ललकार के पहले वह अपने बैलों को बीती हुई बातों की याद दिलाता—याद नहीं, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थीं; सबको कैसे मात किया था ! हाँ, वही कदम निकालो। ले-ले-ले ! ननपुर से फारबिसगंज तीन कोस ! दो घण्टे और !

ननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है। हिरामन अपने लोटे में चाय भरकर ले आया।···कम्पनी की औरत को जानता है वह, सारा दिन, घड़ी-घड़ी-भर में, चाय पीती रहती है। चाय है या जान !

हीरा हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही है—"अरे, तुमसे किसने कह दिया कि क्वारे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए ?"

हिरामन लजा गया। क्या बोले वह ?···लाज की बात। लेकिन वह भोग चुका है एक बार। सरकस कम्पनी की मेम के हाथ की चाय पीकर उसने देख लिया है। बड़ी गरम तासीर !

"पीजिए गुरुजी !" हीरा हँसी।

"इस्स !"

ननपुर हाट पर ही दीया-बाती जल चुकी थी। हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका दिया।···आजकल शहर से पाँच कोस दूर के गाँववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़कर चालान कर देते हैं। बारह बखेड़ा !

"आप मुझे गुरुजी मत कहिए।"

"तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरु और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद!"

"इस्स! सास्तर-पुरान भी जानती हैं!···मैंने क्या सिखाया? मैं क्या···?"

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी—"हे-अ-अ-अ-सावना-भादवा के-र···!"

हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया।···इस्स! इतना तेज़ जेहन! हू-ब-हू महुआ घटवारिन!

गाड़ी सीताधार की एक सूखी धारा की उतरायी पर गड़गड़ाकर नीचे की ओर उतरी। हीराबाई ने हिरामन का कन्धा धर लिया एक हाथ से। बहुत देर तक हिरामन के कन्धे पर उसकी उँगलियाँ पड़ी रहीं। हिरामन ने नज़र फिराकर कन्धे पर केन्द्रित करने की कोशिश की, कई बार। गाड़ी चढ़ाई पर पहुँची तो हीरा की ढीली उँगलियाँ फिर तन गयीं।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिला रही है। शहर से कुछ दूर हटकर मेले की रोशनी···टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास।···डबडबायी आँखों से, हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखायी पड़ती है।

फारबिसगंज तो हिरामन का घर-दुआर है!

न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है। मेले की लदनी लादी है। किसी औरत के साथ? हाँ, एक बार। उसकी भाभी जिस साल आयी थी गौने में। इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेरकर बासा बनाया गया था।···

हिरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान-पट्टी में। सुबह होते ही रौता नौटंकी कम्पनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जायेगी हीराबाई। परसों मेला खुल रहा है। इस बार मेले में पालचट्टी खूब जमी है।···बस, एक रात। आज रात-भर हिरामन की गाड़ी में रहेगी वह।···हिरामन की गाड़ी में नहीं, घर में!

"कहाँ की गाड़ी है?···कौन, हिरामन! किस मेले से? किस चीज़ की लदनी है?"

गाँव-समाज के गाड़ीवान, एक-दूसरे को खोजकर, आसपास गाड़ी लगाकर बासा डालते हैं। अपने गाँव के लालमोहर, धुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देखकर हिरामन अचकचा गया। उधर पलटदास टप्पर में झाँककर भड़का। मानो बाघ पर नज़र पड़ गयी। हिरामन ने

इशारे से सभी को चुप किया। फिर गाड़ी की ओर कनखी मारकर फुसफुसाया—"चुप! कम्पनी की औरत है, नौटंकी कम्पनी की।"

"कम्पनी की-ई-ई-ई?"

"? ?···? ? × ×···!"

एक नहीं, अब चार हिरामन! चारों ने अचरज से एक-दूसरे को देखा।···कम्पनी नाम में कितना असर है! हिरामन ने लक्ष्य किया, तीनों एक साथ सटक-दम हो गये। लालमोहर ने ज़रा दूर हटकर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही। हिरामन ने टप्पर की ओर मुँह करके कहा, "होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहाँ से पक्की ले आवें!"

"हिरामन, ज़रा इधर सुनो।···मैं कुछ नहीं खाऊँगी अभी। लो, तुम खा आओ।"

"क्या है, पैसा? इस्स!"···पैसा देकर हिरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची-पक्की नहीं खायी। उसके गाँव के इतने गाड़ीवान हैं, किस दिन के लिए? वह छू नहीं सकता पैसा। उसने हीराबाई से कहा, "बेकार, मेला-बाज़ार में हुज्जत मत कीजिए। पैसा रखिए।" मौका पाकर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया। उसने सलाम करते हुए कहा, "चार आदमी के भात में दो आदमी खुसी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढ़ा हुआ है। हें-हें-हें! हम लोग एकहि गाँव के हैं। गौंवाँ-गिरामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खायेगा हिरामन?"

हिरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया—"बेसी भचर-भचर मत बको।"

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते-जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी—"इस्स! तुम भी खूब हो हिरामन! उस साल कम्पनी का बाघ, इस बार कम्पनी की जनानी!"

हिरामन ने दबी आवाज़ में कहा, "भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जाये। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कम्पनी की!"

धुन्नीराम ने अपनी शंका प्रकट की—"लेकिन कम्पनी में तो सुनते हैं पतुरिया रहती है।"

"धत्त!" सभी ने एक साथ उसको दुरदुरा दिया, "कैसा आदमी है! पतुरिया रहेगी कम्पनी में भला! देखो इसकी बुद्धि!···सुना है, देखा तो नहीं है कभी!"

धुन्नीराम ने अपनी ग़लती मान ली। पलटदास को बात सूझी—"हिरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेगी गाड़ी पर? कुछ भी हो, जनाना

आखिर जनाना ही है। कोई जरूरत ही पड़ जाये !"

यह बात सभी को अच्छी लगी। हिरामन ने कहा, "बात ठीक है। पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना। और देखो, गपशप जरा होशियारी से करना। हाँ !"

···हिरामन की देह से अतर-गुलाब की खुशबू निकलती है। हिरामन करमसाँड़ है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गन्ध नहीं गयी। लालमोहर ने हिरामन की गमछी सूँघ ली—"ए-ह !"

हिरामन चलते-चलते रुक गया—"क्या करें लालमोहर भाई, जरा कहो तो ! बड़ी जिद्द करती है, कहती है, नौटंकी देखना ही होगा।"

"फोकट में ही ?"

"और गाँव नहीं पहुँचेगी यह बात ?"

हिरामन बोला, "नहीं जी ! एक रात नौटंकी देखकर जिन्दगी-भर बोली-ठोली कौन सुने ?···देसी मुर्गी विलायती चाल !"

धुन्नीराम ने पूछा, "फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भौजाई बात सुनायेगी ?"

लालमोहर के बासा के बगल में, लकड़ी की दूकान लादकर आये हुए गाड़ीवानों का बासा है। बासा के मीर-गाड़ीवान मियाँजान बूढ़े ने सफ़री गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा, "क्यों भाई, मीनाबाज़ार की लदनी लादकर कौन आया है ?"

मीनाबाजार ! मीनाबाजार तो पतुरिया-पट्टी को कहते हैं।···क्या बोलता है यह बूढ़ा मियाँ ? लालमोहर ने हिरामन के कान में फुसफुसाकर कहा, "तुम्हारी देह मह-मह महकती है। सच !"

लहसनवाँ लालमोहर का नौकर-गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या ? बाबू-बबुआइनों के यहाँ बचपन से नौकरी कर चुका है। वह रह-रहकर वातावरण में कुछ सूँघता है, नाक सिकोड़कर। हिरामन ने देखा, लहसनवाँ का चेहरा तमतमा गया है।···कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ ?—"कौन, पलटदास ? क्या है ?"

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुँह भी तमतमाया हुआ था। हिरामन ने पूछा, "क्या हुआ ? बोलते क्यों नहीं ?"

क्या जवाब दे पलटदास ! हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हिरामन की जगह पर। हीराबाई ने पूछा, "तुम भी हिरामन के साथ हो ?" पलटदास ने गरदन हिलाकर हामी भरी। हीराबाई फिर लेट गयी। ···चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुनकर, पलटदास का कलेजा काँपने

लगा; न जाने क्यों। हाँ ! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै ! सियावर रामचन्द्र की जै !···पलटदास के मन में जै-जैकार होने लगा। वह दास-बैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी हुई सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने, हाथ की उँगलियों के इशारे से; मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमककर बैठ गयी—"अरे, पागल है क्या ? जाओ, भागो !···"

पलटदास को लगा, गुस्सायी हुई कम्पनी की औरत की आँखों से चिनगारी निकल रही है—छटक्-छटक् ! वह भागा।···

पलटदास क्या जवाब दे ! वह मेला से भी भागने का उपाय सोच रहा है। बोला, "कुछ नहीं। हमको व्यापारी मिल गया। अभी ही टीसन जाकर माल लादना है। भात में तो अभी देर है। मैं लौट आता हूँ तब तक।"

खाते समय धुन्नीराम और लहसनवाँ ने पलटदास की टोकरी-भर निन्दा की। छोटा आदमी है। कमीना है। पैसे-पैसे का हिसाब जोड़ता है। खाने-पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया। धुन्नी और लहसनवाँ गाड़ी जोतकर हिरामन के बासा पर चले, गाड़ी की लीक धरकर। हिरामन ने चलते-चलते रुककर, लालमोहर से कहा, "जरा मेरे इस कन्धे को सूँघो तो। सूँघकर देखो न ?"

लालमोहर ने कन्धा सूँघकर आँखें मूँद लीं। मुँह से अस्फुट शब्द निकला—"ए-ह !"

हिरामन ने कहा, "जरा-सा हाथ रखने पर इतनी खुशबू !···समझे !"

लालमोहर ने हिरामन का हाथ पकड़ लिया—"कन्धे पर हाथ रखा था ? सच ?···सुनो हिरामन, नौटंकी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं लगेगा। हाँ !"

"तुम भी देखोगे ?"

लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी।

बासा पर पहुँचकर हिरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई, हीराबाई से। धुन्नी और लहसनवाँ ने एक ही साथ कहा, "कहाँ रह गये पीछे ? बहुत देर से खोज रही है कम्पनी···!"

हिरामन ने टप्पर के पास जाकर देखा—अरे, यह तो वही बक्सा ढोने-वाला नौकर, जो चम्पानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बिठाकर अँधेरे में गायब हो गया था।

"आ गये हिरामन ! अच्छी बात, इधर आओ।···यह लो अपना भाड़ा और यह लो अपनी दच्छिना ! पच्चीस-पच्चीस, पचास।"

हिरामन को लगा, किसी ने आसमान से धकेलकर धरती पर गिरा दिया। किसी ने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले आदमी ने। कहाँ से आ गया ? उसकी जीभ पर आयी हुई बात जीभ पर ही रह गयी···इस्स ! दच्छिना ! वह चुपचाप खड़ा रहा।

हीराबाई बोली, "लो, पकड़ो ! और सुनो, कल सुबह रौता कम्पनी में आकर मुझसे भेंट करना। पास बनवा दूँगी।" बोलते क्यों नहीं ?"

लालमोहर ने कहा, "इलाम-बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हिरामन !" हिरामन ने कटकर लालमोहर की ओर देखा।···बोलने का जरा भी ढंग नहीं इस लालमोहरा को।

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी—गाड़ी-बैल छोड़कर नौटंकी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में ?

हिरामन ने रुपया लेते हुए कहा, "क्या बोलेंगे !" उसने हँसने की चेष्टा की।···कम्पनी की औरत कम्पनी में जा रही है। हिरामन का क्या! बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा—"इधर से।" हीराबाई जाते-जाते रुक गयी। हिरामन के बैलों को सम्बोधित करके बोली, "अच्छा, मैं चली भैयन !"

बैलों ने, भैया शब्द पर कान हिलाये।

"? ?···? ?···× ×···!"

"भा-इ-यो, आज रात ! दि रौता संगीत नौटंकी कम्पनी के स्टेज पर ! गुलबदन देखिए, गुलबदन! आपको यह जानकर खुशी होगी कि मथुरामोहन कम्पनी की मशहूर एक्ट्रेस मिस हीरादेवी, जिसकी एक-एक अदा पर हज़ार जान फिदा हैं, इस बार हमारी कम्पनी में आ गयी हैं। याद रखिए। आज की रात। मिस हीरादेवी गुलबदन···!"

नौटंकीवालों के इस एलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है।···हीराबाई ? मिस हीरादेवी ? लैला, गुलबदन···? फिलिम एक्ट्रेस को मात करती है।

···तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा,
तेरी चाहत को दिलबर बयाँ क्या करूँ !
यही ख्वाहिश है कि इ-इ-इ तू मुझको देखा करे
और दिलोजान मैं तुमको देखा करूँ।

···किर्र-र्र-र्र-र्र···कड़ड़ड़ड़ड़र्र-र्र-घन-घन-धड़ाम।

हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है !

लालमोहर दौड़ता-हाँफता बासा पर आया—"ऐ, ऐ हिरामन, यहाँ

क्या बैठे हो, चलकर देखो जै-जैकार हो रहा है ! मय बाजा-गाजा, छापी-फाहरम के साथ हीराबाई की जै-जै कर रहा है।"

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। लहसनवाँ ने कहा, "धुन्नी काका, तुम बासा पर रहो, मैं भी देख आऊँ।"

धुन्नी की बात कौन सुनता है। तीनों जन नौटंकी कम्पनी की एलानिया पार्टी के पीछे-पीछे चलने लगे। हर नुक्कड़ पर रुककर, बाजा बन्द करके एलान किया जाता है। एलान के हर शब्द पर हिरामन पुलक उठता है। हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा-फिदा वगैरह सुनकर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी—"धन्न है, धन्न है ! है या नहीं ?"

लालमोहर ने कहा, "अब बोलो ! अब भी नौटंकी नहीं देखोगे ?" सुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझाकर हार चुके थे—"कम्पनी में जाकर भेंट कर आओ। जाते-जाते पुरसिस कर गयी है।" लेकिन हिरामन की बस एक बात—"धत्त, कौन भेंट करने जाये ! कम्पनी की औरत, कम्पनी में गयी। अब उससे क्या लेना-देना ! चीन्हेगी भी नहीं !"

वह मन-ही-मन रूठा हुआ था। एलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा, "जरूर देखना चाहिए, क्यों लालमोहर ?"

दोनों आपस में सलाह करके रौता कम्पनी की ओर चले। खेमे के पास पहुँचकर हिरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोटवाले से कहा, "बाबू साहेब, जरा सुनिए तो !"

काले कोटवाले ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—"क्या है ? इधर क्यों ?"

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गयी—तेवर देखकर बोला, "गुलगुल···नहीं-नहीं···बुल-बुल···नहीं···।"

हिरामन ने झट-से सम्हाल दिया—"हीरादेवी किधर रहती हैं, बता सकते हैं ?"

उस आदमी की आँखें हठात् लाल हो गयीं। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकारकर कहा, "इन लोगों को क्यों आने दिया इधर ?"

"हिरामन !"···वही फेनूगिलासी आवाज किधर से आयी ? खेमे के परदे को हटाकर हीराबाई ने बुलाया—"यहाँ आ जाओ, अन्दर !···देखो, बहादुर ! इसको पहचान लो। यह मेरा हिरामन है। समझे ?"

नेपाली दरबान हिरामन की ओर देखकर ज़रा मुस्कराया और चला गया। काले कोटवाले से जाकर कहा, "हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला !"

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए—"खाया जाय !"

"इस्स ! एक नहीं, पांच पास। चारों अठनिया ! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात में आकर देखना। सबका खयाल रखती है। बोली कि तुम्हारे और साथी हैं, सभी के लिए पास ले जाओ। कम्पनी की औरतों की बात निराली होती है ! है या नहीं ?"

लालमोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छूकर देखा—"पा-स ! वाह रे हिरामन भाई ! ···लेकिन पांच पास लेकर क्या होगा ? पलटदास तो फिर पलटकर आया ही नहीं है अभी तक।"

हिरामन ने कहा, "जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नहीं।··· हाँ, पहले गुरुकसम खानी होगी सभी को, कि गांव-घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाये।"

लालमोहर ने उत्तेजित होकर कहा, "कौन साला बोलेगा, गांव में जाकर ? पलटा ने अगर बदमासी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊँगा।"

हिरामन ने अपनी थैली आज हीराबाई के जिम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना ! किस्म-किस्म के पाकिटकाट लोग हर साल आते हैं। अपने साथी-संगियों का भी क्या भरोसा ! हीराबाई मान गयी। हिरामन के कपड़े की काली थैली को उसने अपने चमड़े के बक्स में बन्द कर दिया। बक्से के ऊपर भी कपड़े का खोल और अन्दर भी झलमल रेशमी अस्तर ! मन का मान-अभिमान दूर हो गया।

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिलकर हिरामन की बुद्धि की तारीफ की; उसके भाग्य को सराहा बार-बार। उसके भाई और भाभी की निन्दा की, दबी जबान से। हिरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसीलिए ! कोई दूसरा भाई होता तो···।

लहसनवाँ का मुँह लटका हुआ है। एलान सुनते-सुनते न जाने कहाँ चला गया कि घड़ी-भर साँझ होने के बाद लौटा है। लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ—"सोहदा कहीं का"

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाते हुए कहा, "पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा !"

"रहेगा कौन, यह लहसनवाँ कहाँ जायेगा ?"

लहसनवाँ रो पड़ा—"ऐ-ए-ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं। एक्को झलक ! बस, एक झलक !"

हिरामन ने उदारतापूर्वक कहा, "अच्छा-अच्छा, एक झलक क्यों, एक घण्टा देखना। मैं आ जाऊँगा।"

नौटंकी शुरू होने के दो घण्टे पहले ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है। और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतिंगों की तरह टूटने लगते हैं। टिकटघर के पास भीड़ देखकर हिरामन को बड़ी हँसी आयी—"लालमोहर, उधर देख, कैसी धक्कमधुक्की कर रहे हैं लोग !"

"हिरामन भाय !"

"कौन, पलटदास ! कहाँ की लदनी लाद आये ?" लालमोहर ने पराये गाँव के आदमी की तरह पूछा।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफ़ी माँगी—"कसूरवार हैं; जो सजा दो तुम लोग, सब मंजूर है। लेकिन सच्ची बात कहें कि सिया सुकुमारी···।"

हिरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है। बोला, "देखो पलटा, यह मत समझना कि गांव-घर की जनाना है। देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है; पास ले लो अपना, तमासा देखो।"

लालमोहर ने कहा, "लेकिन एक सर्त पर पास मिलेगा। बीच-बीच में लहसनवाँ को भी···।"

पलटदास को कुछ बताने की जरूरत नहीं। वह लहसनवाँ से बातचीत कर आया है अभी।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी—"गाँव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह···।"

"राम-राम !" दाँत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदास ने।

पलटदास ने बताया—"अठनिया फाटक इधर है।" फाटक पर खड़े दरबान ने हाथ से पास लेकर उनके चेहरे को बारी-बारी से देखा, बोला, "यह तो पास है। कहाँ से मिला ?"

अब लालमोहर की कचराही बोली सुने कोई ! उसके तेवर देखकर दरबान घबरा गया—"मिलेगा कहाँ से ? अपनी कम्पनी से पूछ लीजिए जाकर। चार ही नहीं, देखिए एक और है।" जेब से पाँचवाँ पास निकालकर दिखाया लालमोहर ने।

एक रुपयावाले फाटक पर नेपाली दरबान खड़ा था। हिरामन ने पुकारकर कहा, "ए सिपाही दाजू, सुबह को ही पहचनवा दिया और अभी भूल गये ?"

नेपाली दरबान बोला, "हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास है तो फिर काहे को रोकता है ?"

अठनिया दर्जा !

तीनों ने 'कपड़घर' को अन्दर से पहली बार देखा। सामने कुरसी-बेंचवाले दर्जे हैं। परदे पर राम-बन-गमन की तसवीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, परदे पर अंकित राम-सिया सुकुमारी और लखनलला को। "जै हो, जै हो !" पलटदास की आँखें भर आयीं।

हिरामन ने कहा, "लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं ?"

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्शकों से जान-पहचान कर चुका है। उसने कहा, "खेला अभी परदा के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।"

पलटदास ढोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान-प्रदान करके हिरामन ने भी एकाध जान-पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह को ढकते हुए कहा, "नाच शुरू होने में अभी देर है, तब तक एक नींद ले लें।···सब दर्जा से अच्छा अठनिया दर्जा। सबसे पीछे सबसे ऊँची जगह पर है। ज़मीन पर गरम पुआल ! हे-हे ! कुरसी-बेंच पर बैठकर इस सरदी के मौसम में तमासा देखनेवाले अभी घुच-घुचकर उठेंगे चाह पीने।"

उस आदमी ने अपने संगी से कहा, "खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं-नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं, हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना।"

हिरामन के कलेजे में ज़रा आँच लगी।···हिरिया ! बड़ा लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर को आँख के इशारे से कहा, "इस आदमी से बतियाने की ज़रूरत नहीं।"

···घन-घन-घन-धड़ाम ! परदा उठ गया। हे-ए, हे-ए, हीराबाई शुरू में ही उतर गयी स्टेज पर ! कपड़घर खचमखच भर गया है। हिरामन का मुँह अचरज से खुल गया। लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हँसी आ रही है। हीराबाई के गीत के हर पद पर वह हँसता है, बेवजह।

गुलबदन दरबार लगाकर बैठी है। एलान कर रही है : जो आदमी तख्तहजारा बनाकर ला देगा, मुँहमाँगी चीज़ इनाम में दी जायेगी।···अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाये तैयार, बनाकर लाये तख्तहजारा-आ ! किड़किड़-किर्रि—! अलबत्त नाचती है ! क्या गला है ! मालूम है, यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान-बीड़ी, सिगरेट-जर्दा कुछ नहीं खाती ! ···ठीक कहता है। बड़ी नेमवाली रण्डी है।···कौन कहता है कि रण्डी है ! दाँत में मिस्सी कहाँ है। पौडर से दाँत धो लेती होगी। हरगिज नहीं।··· कौन आदमी है, बात की बेबात करता है ! कम्पनी की औरत को पतुरिया कहता है ! तुमको बात क्यों लगी ? कौन है रण्डी का भड़वा ? मारो साले को ! मारो ! तेरी···।

हो-हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज़ कपड़घर को फाड़ रही है—"आओ, एक-एक की गरदन उतार लेंगे।"

लालमोहर दुआली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को। पलटदास एक आदमी की छाती पर सवार है—"साला, सिया सुकुमारी को गाली देता है, सो भी मुसलमान होकर ?"

धुन्नीराम शुरू से ही चुप था। मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकलकर बाहर भागा।

काले कोटवाले नौटंकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आये। दारोगा साहब ने हण्टर से पीट-पाट शुरू की। हण्टर खाकर लालमोहर तिलमिला उठा; कचराही बोली में भाषण देने लगा—"दारोगा साहब, मारते हैं, मारिए। कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह पास देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी है। देख सकते हैं हुज़ूर। टिकस नहीं, पास ! ···तब हम लोगों के सामने कम्पनी की औरत को कोई बुरी बात कहे तो कैसे छोड़ देंगे ?"

कम्पनी के मैनेजर की समझ में आ गयी सारी बात। उसने दारोगा को समझाया—"हुज़ूर, मैं समझ गया। यह सारी बदमाशी मथुरामोहन कम्पनीवालों की है। तमाशे में झगड़ा खड़ा करके कम्पनी को बदनाम··· नहीं हुज़ूर, इन लोगों को छोड़ दीजिए, हीराबाई के आदमी हैं। बेचारी की जान खतरे में है। हुज़ूर से कहा था न !"

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया। लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गयी। मैनेजर ने तीनों को एक रुपयेवाले दरजे में कुरसी पर बिठाया—"आप लोग यहीं बैठिए। पान भिजवा देता हूँ।" कपड़घर शान्त हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आयी।

नगाड़ा फिर धनधना उठा।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही साथ धुन्नीराम का खयाल हुआ—अरे, धुन्नीराम कहाँ गया ?

"मालिक, ओ मालिक !" लहसनवाँ कपड़घर से बाहर चिल्लाकर पुकार रहा है, "ओ लालमोहर मा-लि-क !"

लालमोहर ने तारस्वर में जवाब दिया—"इधर से, उधर से ! एकटकिया फाटक से।" सभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़कर देखा। लहसनवाँ

को नेपाली सिपाही लालमोहर के पास ले आया। लालमोहर ने जेब से पास निकालकर दिखा दिया। लहसनवाँ ने आते ही पूछा, "मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था ? बोलिए तो ज़रा। चेहरा दिखला दीजिए, उसकी एक झलक !"

लोगों ने लहसनवाँ की चौड़ी और सपाट छाती देखी। जाड़े के मौसम में भी खाली देह ! ···चेले-चाटी के साथ हैं ये लोग !

लालमोहर ने लहसनवाँ को शान्त किया।

···तीनों-चारों से मत पूछे कोई, नौटंकी में क्या देखा। किस्सा कैसे याद रहे ! हिरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसी की ओर टक-टकी लगाकर देख रही है, गा रही है, नाच रही है। लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसी की ओर देखती है। वह समझ गयी है, हिरामन से भी ज्यादा पावरवाला आदमी है लालमोहर ! पलटदास किस्सा समझता है। ···किस्सा और क्या होगा, रमैन की ही बात। वही राम, वही सीता, वही लखनलाल और वही रावन ! सिया सुकुमारी को रामजी से छीनने के लिए रावन तरह-तरह का रूप धरकर आता है। राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं। यहाँ भी तख्त-हजारा बनानेवाला माली का बेटा राम है। गुलबदन सिया सुकुमारी है। माली के लड़के का दोस्त लखनलला है और सुलतान है रावन।···धुन्नीराम को बुखार है तेज ! लहसनवाँ को सबसे अच्छा जोकर का पार्ट लगा है···चिरैया तोंहके लेके ना जइबै नरहट के बजरिया ! वह उस जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है।···नहीं लगावेगा दोस्ती, जोकर साहब ?

हिरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है—'मारे गये गुल-फ़ाम !' कौन था यह गुलफ़ाम ? हीराबाई रोती हुई गा रही थी—"अजी हाँ, मारे गये गुलफ़ाम !" टिड़िड़िड़ि···बेचारा गुलफ़ाम !

तीनों को दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा, "लाठी-दुआली लेकर नाच देखने आते हो ?"

दूसरे दिन मेले-भर में यह बात फैल गयी—मथुरामोहन कम्पनी से भागकर आयी है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कम्पनी नहीं आयी है।··· उसके गुण्डे आये हैं।···हीराबाई भी कम नहीं। बड़ी खेलाड़ औरत है। तेरह-तेरह देहाती लठैत पाल रही है।···'वाह मेरी जान' भी कहे तो कोई ! मजाल है !

दस दिन···दिन-रात ! ···

दिन-भर भाड़ा ढोता हिरामन। शाम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने

लगता। नगाड़े की आवाज़ सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मँडराने लगती—भैया···मीता···हिरामन···उस्ताद···गुरुजी ! हमेशा कोई-न-कोई बाजा उसके मन के कोने में बजता रहता, दिन-भर। कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा, कभी ढोलक और कभी हीराबाई की पैंजनी। उन्हीं साजों की गत पर हिरामन उठता-बैठता, चलता-फिरता। नौटंकी कम्पनी के मैनेजर से लेकर परदा खींचनेवाले तक उसको पहचानते हैं।··· हीराबाई का आदमी है।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता, हाथ जोड़कर। लालमोहर, एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को। हीराबाई ने पहचाना ही नहीं। तब से उसका दिल छोटा हो गया है। उसका नौकर लहसनवाँ उसके हाथ से निकल गया है, नौटंकी कम्पनी में भर्ती हो गया है। जोकर से उसकी दोस्ती हो गयी है। दिन-भर पानी भरता है, कपड़े धोता है। कहता है, गाँव में क्या है जो जायेंगे ! लालमोहर उदास रहता है। धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार होकर।

हिरामन आज सुबह से तीन बार लदनी लादकर स्टेशन आ चुका है। आज न जाने क्यों उसको अपनी भौजाई की याद आ रही है।···धुन्नीराम ने कुछ कह तो नहीं दिया है, बुखार की झोंक में ! यहीं कितना अटर-पटर बक रहा था—गुलबदन, तख्त-हज़ारा !···लहसनवाँ मौज में है। दिन-भर हीराबाई को देखता होगा। कल कह रहा था, हिरामन मालिक, तुम्हारे अकबाल से खूब मौज में हूँ। हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौते का पानी अतरगुलाब हो जाता है। उसमें अपनी गमछी डुबाकर छोड़ देता हूँ। लो, सूँघोगे ?···हर रात, किसी-न-किसी के मुँह से सुनता है वह—हीराबाई रण्डी है। कितने लोगों से लड़े वह ! बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते हैं ! राजा को भी लोग पीठ-पीछे गाली देते हैं !···आज वह हीराबाई से मिलकर कहेगा, नौटंकी कम्पनी में रहने से बहुत बदनाम करते हैं लोग। सरकस कम्पनी में क्यों नहीं काम करती ?···सबके सामने नाचती है, हिरामन का कलेजा दप-दप जलता रहता है उस समय। सरकस कम्पनी में बाघ को···उसके पास जाने की हिम्मत कौन करेगा ! सुरक्षित रहेगी हीराबाई !···किधर की गाड़ी आ रही है ?

"हिरामन, ए हिरामन भाय !" लालमोहर की बोली सुनकर हिरामन ने गरदन मोड़कर देखा।···क्या लादकर लाया है लालमोहर ?

"तुमको ढूंढ़ रही है हीराबाई, इस्टिसन पर। जा रही है।" एक ही साँस में सुना गया। लालमोहर की गाड़ी पर ही आयी है मेले से।

"जा रही है ? कहाँ ? हीराबाई रेलगाड़ी से जा रही है ?"

हिरामन ने गाड़ी खोल दी। मालगुदाम के चौकीदार से कहा, "भैया, जरा गाड़ी-बैल देखते रहिए। आ रहे हैं।"

"उस्ताद !" जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पास हीराबाई ओढ़नी से मुंह-हाथ ढककर खड़ी थी। थैली बढ़ाती हुई बोली, "लो ! हे भगवान ! भेंट हो गयी, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी। तुमसे अब भेंट नहीं हो सकेगी।···मैं जा रही हूँ गुरुजी !"

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट-पतलून पहनकर बाबूसाहब बन गया है। मालिकों की तरह कुलियों को हुकम दे रहा है—"जनाना दर्जा में चढ़ाना। अच्छा ?"

हिरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा रहा। कुरते के अन्दर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने।···चिड़िया की देह की तरह गर्म है थैली।

"गाड़ी आ रही है।" बक्सा ढोनेवाले ने मुंह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव स्पष्ट है—इतना ज्यादा क्या है···?

हीराबाई चंचल हो गयी। बोली, "हिरामन, इधर आओ, अन्दर। मैं फिर लौटकर जा रही हूँ मथुरामोहन कम्पनी में। अपने देश की कम्पनी है। ···बनैली मेला आओगे न ?"

हीराबाई ने हिरामन के कन्धे पर हाथ रखा···इस बार दाहिने कन्धे पर। फिर अपनी थैली से रुपया निकालते हुए बोली, "एक गरम चादर खरीद लेना···।"

हिरामन की बोली फूटी, इतनी देर के बाद—"इस्स ! हरदम रुपैया-पैसा ! रखिए रुपैया ! ···क्या करेंगे चादर ?"

हीराबाई का हाथ रुक गया। उसने हिरामन के चेहरे को गौर से देखा। फिर बोली, "तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता ? ···महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी !"

गला भर आया हीराबाई का। बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी—"गाड़ी आ गयी।" हिरामन कमरे से बाहर निकल आया। बक्सा ढोनेवाले ने नौटंकी के जोकर-जैसा मुंह बनाकर कहा, " 'लाटफारम' से बाहर भागो। बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा···।"

हिरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया।···टीसन की बात, रेलवे का राज ! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुंह सीधा कर देता हिरामन।···

हीराबाई ठीक सामनेवाली कोठरी में चढ़ी। इस्स ! इतना टान ! गाड़ी में बैठकर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर-टुकुर।···लाल-मोहर को देखकर जी जल उठता है, हमेशा पीछे-पीछे; हरदम हिस्सादारी सूझती है।

गाड़ी ने सीटी दी। हिरामन को लगा, उसके अन्दर से कोई आवाज निकलकर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गयी—कू-ऊ-ऊ ! इ-स्स···!

—छी-ई-ई- छक्क ! गाड़ी हिली। हिरामन ने अपने दाहिने पैर के अंगूठे को बायें पैर की एड़ी से कुचल लिया। कलेजे की धड़कन ठीक हो गयी।···हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिला-कर इशारा करती है···अब जाओ।···आखिरी डब्बा गुजरा; प्लेटफार्म खाली···सब खाली···खोखले···मालगाड़ी के डब्बे ! दुनिया ही खाली हो गयी मानो ! हिरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया।

हिरामन ने लालमोहर से पूछा, "तुम कब तक लौट रहे हो गाँव ?"

लालमोहर बोला, "अभी गाँव जाकर क्या करेंगे ? यही तो भाड़ा कमाने का मौका है ! हीराबाई चली गयी, मेला अब टूटेगा।"

—"अच्छी बात। कोई समाद देना है घर ?"

लालमोहर ने हिरामन को समझाने की कोशिश की। लेकिन हिरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जानेवाली सड़क की ओर मोड़ दी।···अब मेले में क्या धरा है ! खोखला मेला !

रेलवे लाइन की बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गयी है दूर तक। हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। उसके मन में फिर पुरानी लालसा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगरनाथ-धाम जाने की लालसा।···उलटकर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है। पीठ में आज भी गुदगुदी लगती है। आज भी रह-रहकर चम्पा का फूल खिल उठता है, उसकी गाड़ी में। एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है, बार-बार !···

उसने उलटकर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं—परी···देवी···मीता···हीरादेवी···महुआ घटवारिन—को-ई नहीं। मरे हुए मुहूर्तों की गूंगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कम्पनी की औरत की लदनी···।

हिरामन ने हठात् अपने दोनों बैलों को झिड़की दी, दुआली से मारते हुए बोला, "रेलवे लाइन की ओर उलट-उलटकर क्या देखते हो ?" दोनों बैलों ने कदम खोलकर चाल पकड़ी। हिरामन गुनगुनाने लगा—"अजी हाँ, मारे गये गुलफ़ाम···!"

०००